वर्ष- 82
अंक- 8
₹- 15 प्रति
₹- 180 वार्षिक
अगस्त-2018
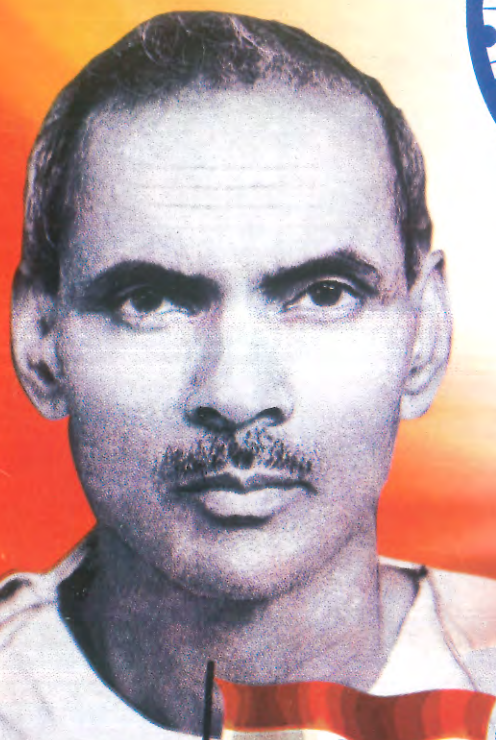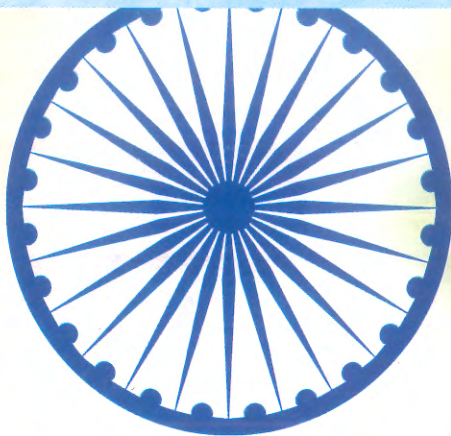
अखण्ड ज्योति

www.awgp.org

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा माता
भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा
दूरभाष नं० (0565) 2403940
2400865, 2402574
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
फैक्स नं० (0565) 2412273
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
ईमेल–ajsansthan@awgp.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक
वर्ष : 82
अंक : 08
अगस्त : 2018
श्रावण–भाद्रपद : 2075
प्रकाशन तिथि : 01.07.2018
वार्षिक चंदा
भारत में : 180/–
विदेश में : 1400/–
भारत में आजीवन : 3500/–
(सुरक्षा निधि)

भारत

भारत एक पुण्यभूमि है, महान भूमि है। इस पूरी वसुधा पर यदि कोई एक देश है, जहाँ आध्यात्मिक अन्वेषण अपने शिखर को उपलब्ध हो सका तो वह भारत ही है। अत्यंत प्राचीनकाल से ही यहाँ पर भिन्न-भिन्न धर्मों के संस्थापकों ने अवतार लेकर सारे संसार को सत्य की आध्यात्मिक, सनातन और पवित्र धारा से बारंबार सराबोर किया है।

इस देश की मिट्टी ऐसी पवित्र मिट्टी है कि यदि वो तप जाती है तो छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप, पृथ्वीराज चौहान जैसे शूरमाओं को जन्म देती है, यदि वो गल जाती है तो परमपूज्य गुरुदेव, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद, स्वामी रामकृष्ण परमहंस जैसे संतों को जन्म देती है, मीरा, चैतन्य, सूर, तुलसी जैसे भक्तों में बदल जाती है, यदि वो ज्ञान के साथ जुड़ जाती है तो शंकर, रामानुज, मध्व, पतंजलि जैसे विद्वानों को जन्म देती है और यदि वह अर्पित हो जाती है तो सप्त ऋषियों में, गुरुओं में, अवतारों में व तीर्थंकरों में बदल जाती है।

संभवतया इसीलिए अपने विदेश प्रवास से लौटने पर स्वामी विवेकानंद ने कहा था—''यदि पृथ्वी पर कोई ऐसा देश है, जिसे हम पुण्यभूमि कह सकते हैं, यदि कोई ऐसा स्थान है, जहाँ पृथ्वी के सब जीवों को अपना कर्मफल भोगने के लिए आना ही पड़ता है, यदि कोई ऐसा स्थान है, जहाँ भगवान की ओर उन्मुख होने के प्रयत्न में संलग्न रहने वाले जीवमात्र को अंततः आना होगा, यदि कोई ऐसा देश है, जहाँ मानव जाति की क्षमा, धृति, दया, शुद्धता आदि सद्वृत्तियों का सर्वाधिक विकास हुआ है और यदि कोई ऐसा देश है, जहाँ आध्यात्मिकता तथा आत्मान्वेषण का सर्वाधिक विकास हुआ है, तो वह भूमि भारत ही है।''

पवित्रता व प्रखरता की धाराओं से आप्लावित उन शब्दों को साक्षी मानकर आज यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि कल, इसी देश से वह धारा बहेगी, जो भटकी मानवता को सही दिशा प्रदान करेगी। यह विश्वास करने की आवश्यकता है कि कल यही होने जा रहा है, यही सत्य है और यही भारत का सुनिश्चित एवं गौरवशाली भविष्य है। ❑

►शक्ति संरक्षण वर्ष◄

विषय सूची

आवरण पृष्ठ परिचय

स्वतंत्रता संग्राम सेनानी हमारे गुरुदेव 'श्रीराम मत्त'

अगस्त-सितंबर, 2018 के पर्व-त्योहार

मंगलवार	07 अगस्त	कामिका एकादशी
शनिवार	11 अगस्त	हरियाली अमावस्या
बुधवार	15 अगस्त	स्वतंत्रता दिवस/ नाग पंचमी
शुक्रवार	17 अगस्त	तुलसी जयंती
बुधवार	22 अगस्त	पवित्रा एकादशी
रविवार	26 अगस्त	रक्षाबंधन
गुरुवार	30 अगस्त	बहुला चौथ
शनिवार	01 सितंबर	हलषष्ठी
रविवार	02 सितंबर	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
गुरुवार	06 सितंबर	अजा एकादशी
रविवार	09 सितंबर	कुशाग्रहणी अमावस्या
बुधवार	12 सितंबर	हरितालिका व्रत
गुरुवार	13 सितंबर	गणेश चतुर्थी
शुक्रवार	14 सितंबर	ऋषि पंचमी
शनिवार	15 सितंबर	सूर्य षष्ठी
सोमवार	17 सितंबर	विश्वकर्मा जयंती
गुरुवार	20 सितंबर	जलझूलनी एकादशी
शुक्रवार	21 सितंबर	वामन जयंती
सोमवार	24 सितंबर	महालयारंभ/महाप्रयाण दिवस
शनिवार	29 सितंबर	परम वंदनीया माताजी जयंती

यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक*

▶शक्ति संरक्षण वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

भारत के भाल से गरीबी मिटा दें

इस माह की पंद्रह तारीख को अपने देश, भारत को स्वाधीन हुए 71 वर्ष बीत चुके हैं। स्वाधीनता के इस पायदान तक पहुँचने के लिए अनेक महान आत्माओं को लौकिक या अलौकिक, दृश्य या अदृश्य रूप से अपने जीवन की आहुतियाँ देनी पड़ीं और उसके उपरांत ही इस स्वतंत्र भारत का सौभाग्य, हम जैसी पीढ़ियों को नसीब हो सका। स्वाधीनता प्राप्त करने की डगर निश्चित रूप से चुनौतियों एवं विषमताओं से परिपूर्ण थी तो वहीं स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद की राह भी पूर्णतया निष्कंटक नहीं कही जा सकती है। जहाँ एक ओर, स्वाधीन भारत में बहुत से ऐसे परिवर्तन हुए हैं, जिनका होना अपने आप में एक ऐतिहासिक घटना थी तो वहीं ऐसी चुनौतियों की भी कमी नहीं है, जिनका यदि समय रहते समाधान न खोजा गया तो वे आने वाली पीढ़ियों के पगों में शूल की तरह चुभ सकती हैं एवं उनकी विकासयात्रा को अवरुद्ध कर सकती हैं।

आज भारत के विकास के मार्ग में एवं उसे एक वैश्विक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण घटक बनने की राह में— भारत में व्याप्त गरीबी की समस्या, एक गंभीर चुनौती के रूप में दिखाई पड़ती है। इस सत्य के बावजूद कि भारत विश्व की एक तेजी से बढ़ती व विकसित होती अर्थव्यवस्था है और भारत की विकास दर, विगत दशक में 6 एवं 7 % के मध्य स्थिर रही है, यह भी सत्य है कि भारत विश्व के सबसे गरीब देशों में से एक है।

विश्व के सर्वाधिक गरीब लोगों में से 20.6% लोग भारत के निवासी हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो दुनिया का हर पाँचवाँ गरीब व्यक्ति भारतीय नागरिक है। दुखद बात ये है कि गरीबी की यह परिभाषा, मूलभूत मानवीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तैयार की गई है और उस परिभाषा के आधार पर ही इतने गरीब लोग भारत में निवास करते दिखाई पड़ते हैं। इन आँकड़ों का दूसरा अर्थ यह भी है कि इतना बड़ा जनसमूह मूलभूत मानवीय अधिकारों से पूर्ण रूप से वंचित भी प्रतीत होता है।

भारत सरकार द्वारा विभिन्न समयों पर, विभिन्न तरह की समितियाँ इसके कारण को जानने के लिए बनाई गई थीं। इन समितियों के निष्कर्ष भी भिन्न-भिन्न आए एवं राजनीतिक अस्थिरता के कारण इनकी ज्यादातर सिफारिशें आज तक लागू भी नहीं हो पाई हैं। इस क्षेत्र में ज्यादा गंभीरता के साथ पहला प्रयास सुरेश तेंदुलकर समिति द्वारा किया था, जिसकी गणना के अनुसार वर्ष— +2009-10 में भारत की 29.6 % जनसंख्या एवं वर्ष— 2011-12 में भारत की कुल जनसंख्या का 21.9% अंश गरीबी की रेखा से नीचे या Below Poverty Line निवास कर रहा था।

इन्हीं वर्षों की गणना रंगराजन समिति द्वारा की गई तो उसने लगभग 38.2% जनसंख्या को गरीबी की रेखा से नीचे निवास करता हुआ बताया। आँकड़ों की इन व्यापक विषमताओं के कारण भी एक समुचित रणनीति का बन पाना संभव न हो सका है। इसका एक और कारण यह भी रहा है कि विभिन्न समितियों द्वारा गरीबी की परिभाषाएँ भी भिन्न-भिन्न दी गई हैं। इन्हीं कारणों से ये समितियाँ मूल मुद्दे तक तो पहुँच भी नहीं पातीं और मात्र परिभाषाओं के निर्धारण में ही उनकी ऊर्जा का एक बड़ा अंश जाया हो जाता है।

गरीबी को परिभाषित चाहे जिस विधि से किया जाए, एक बात पर सारे विशेषज्ञ सहमत हैं कि भारत में गरीबी, गुलामी के दिनों में सबसे ज्यादा तेजी से बढ़ी थी। इस अवधि में अँगरेज सरकार द्वारा धीरे-धीरे भारत के रोजगारपरक प्रकल्पों, हस्तशिल्प, उद्योगों इत्यादि को समाप्त किया गया एवं उसी के साथ-साथ भारत की कृषियोग्य भूमि को काट-काटकर उन हितों के लिए समर्पित कर दिया गया, जिनकी उपयोगिता अँगरेज सरकार के लिए तो थी, परंतु वे भारतीय नागरिकों के लिए एक समस्या के अतिरिक्त और कुछ नहीं थे।

उदाहरण के तौर पर, पूरे गंगा तराई के कृषिक्षेत्र को, जिसमें संपूर्ण उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड एवं पश्चिम बंगाल की गंगा का तराई वाला खेती योग्य हिस्सा शामिल

▶शक्ति संरक्षण वर्ष◀

था—को मात्र ऑपियम की खेती में जोत दिया गया। ये सारा ऑपियम फिर चीन से लेकर दक्षिण पूर्वी एशिया में निर्यात किया जाता था और इस पूरी पैदावार की कमाई पर एकाधिकार ईस्ट इंडिया कंपनी का था।

सन् 1850 से प्रारंभ हुई इस प्रक्रिया के कारण सन् 1900 आते-आते, भारत की करीब 5,00,000 एकड़ भूमि, जो कृषियोग्य थी, केवल ऑपियम उगाने के कार्य में जुट चुकी थी। स्वाभाविक था कि इसका प्रभाव पैदावार पर पड़ता। वे किसान, जो भरपूर फसल के मालिक हुआ करते थे, वो भुखमरी व गरीबी के शिकार होने लगे। गंगा क्षेत्र के चार में से तीन किसानों के परिवार या तो उन दिनों भुखमरी के शिकार थे या भयंकर गरीबी के।

इन औपनिवेशिक नीतियों का दुष्परिणाम यह हुआ कि भारत के ज्यादातर बेरोजगार उद्यमी भी ऑपियम की खेती में जुटने लगे और धीरे-धीरे भारत एक ऐसी भूमि में बदलने लगा, जहाँ एक अकुशल मजदूरों की फौज खड़ी होने लगी। लोग भूखों मर रहे थे और अँगरेजी सरकार इसको मूक होकर देख रही थी। बंगाल के अकाल के समय, जिसमें लाखों निरपराध लोग इन्हीं नीतियों के कारण मृत्यु को प्राप्त हुए—उस समय देश में अन्न का भंडार होते हुए भी, उसे मात्र अँगरेजों के लिए सुरक्षित रखा गया। स्वयं अँगरेजी सरकार द्वारा तैयार कराई गई लैंसेट रिपोर्ट के अनुसार, मात्र सन् 1896 से सन् 1900 के मध्य भारत में करीब 1.9 करोड़ लोग गरीबी एवं भुखमरी के कारण मारे गए।

स्वतंत्रता के बाद इस स्थिति में निश्चित रूप से सुधार हुआ, परंतु अब भी गरीबी, भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए एक भीषण चुनौती के रूप में सामने खड़ी है। स्वाधीन भारत में इस गरीबी के कारण भिन्न-भिन्न हैं। शहरों में गरीबी के प्रमुख कारणों में से एक गरीब लोगों का, रोजगार के अभाव में, गाँवों से शहरों की ओर पलायन करना है। इसी कारण शहरी जनसंख्या में से 8 करोड़ लोग आज भी गरीबी की रेखा के नीचे निवास करते पाए जाते हैं।

ये लोग जो गाँवों से शहरों की ओर आते हैं, इन्हें बैंक से न तो लोन मिल पाता है और न ही स्थायी निवासी होने के कारण, ये अपना एकाउंट बैंकों में खोल पाते हैं। एक शोध गणना के अनुसार, इनमें से लगभग 51% लोग अकुशल कार्यों में या मजदूरी इत्यादि अस्थायी रोजगारों में संलग्न हैं, जिससे ये देश की अर्थव्यवस्था में कोई स्थायी योगदान नहीं दे पाते हैं और साथ ही इनका स्वयं का आर्थिक विकास भी समुचित रूप से नहीं हो पाता है। यहाँ यह भी तथ्य ध्यान देने योग्य है कि बहुत से श्रमिक, मूलतया किसान होते हैं, जो अपने क्षेत्रों में फसल लगाने के बाद अस्थायी तौर पर दूसरे राज्यों में श्रमिक कार्य के लिए निकल पड़ते हैं। बैंक एकाउंट इत्यादि के अभाव में ये राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में किसी तरह का योगदान दे पाने की स्थिति में नहीं होते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में कृषिव्यवस्था का समुचित तरीके से न हो पाना भी गरीबी का एक मुख्य कारण है। भारत की 60% अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है, परंतु ज्यादातर किसानों के पास सही शिक्षा, कृषि के आधुनिक तरीकों, सिंचाई की व्यवस्था, अच्छे बीज इत्यादि का अभाव होने के कारण पैदावार सही से नहीं हो पाती। इसके कारण ज्यादातर किसानों को घाटे का सामना करना पड़ता है। इधर से निरंतर नए आवासों, कारखानों, शहरों इत्यादि के निर्माण के कारण कृषियोग्य भूमि भी घटती जा रही है।

इसके साथ ही किसानों की संख्या भी कम हो रही है तो वहीं दूसरी ओर भारत की जनसंख्या अनियंत्रित तरीके से बढ़ती जा रही है। साथ ही अमीरों व गरीबों के बीच की खाई भी भयंकर रूप से बढ़ रही है। जहाँ एक ओर ऐसे लोगों की संख्या तेजी से बढ़ी है, जो पैसा पानी की तरह लुटाते हैं तो दूसरी ओर, एक बड़ा वर्ग ऐसे लोगों का है, जो दो वक्त की रोटी की व्यवस्था भी सही ढंग से नहीं कर पाते। इन सबके अतिरिक्त घुन की तरह से भारत की सामाजिक संरचना को खा रहे भ्रष्टाचार एवं कालेधन के कीड़े, गरीबी की इस समस्या को और भी वीभत्स रूप देते दिखाई पड़ते हैं।

गरीबी की इस समस्या के दुष्परिणाम भाँति-भाँति से हमारी सामाजिक व्यवस्था को खोखला करते दिखाई पड़ते हैं। अशिक्षा, बाल मजदूरी, भुखमरी, बेरोजगारी, सामाजिक विषमताएँ इसी की देन हैं। यदि इस एक समस्या पर अंकुश लगाया जा सके तो भारत को विकास के शिखर पर पहुँचने से कोई नहीं रोक सकता। इस समस्या के समाधान के मार्ग वैसे तो अनेकों हैं, परंतु उनमें से ज्यादातर विषय नीतिगत होने के कारण, उन विषयों पर ध्यान केंद्रित करना ज्यादा श्रेष्ठ होगा, जिन पर प्रयास गायत्री परिवार के द्वारा संभव है।

गरीबी की समस्या पर वर्षों पहले ही सभी का ध्यान आकर्षित करते हुए परमपूज्य गुरुदेव ने 'गाँव जागे तो देश जागे' जैसी अभिकल्पना दी थी। परमपूज्य गुरुदेव ने कहा था कि भारत की एक बहुत बड़ी आबादी गाँवों में निवास करती है और गाँवों की गरीबी को दूर किए बगैर एक समुन्नत भारत की कल्पना, मात्र कल्पना ही बन करके रह जाएगी। पूज्य गुरुदेव का चिंतन था कि यदि भारत से गरीबी को सदा के लिए विदा करना है तो उसके लिए गाँवों के जागरण के माध्यम से राष्ट्र के विकास के चिंतन को मूर्त्त रूप देना एक सटीक व सार्थक समाधान होगा।

इस हेतु उन्होंने एक सप्तसूत्रीय विकास के मॉडल को प्रस्तावित किया था, जिसके केंद्र में एक स्वस्थ, स्वच्छ, शिक्षित, स्वावलंबी, व्यसनमुक्त, संस्कारयुक्त एवं सहकारयुक्त गाँव का स्वरूप था। यह चिंतन देने के पीछे उनका मूल भाव यह था कि आज सारा देश बिकाऊ विकास के बारे में सोचता नजर आता है, परंतु आवश्यकता टिकाऊ विकास की है। यदि व्यक्ति के पास मात्र पैसे आ जाएँ और उन पैसों के समुचित उपयोग, निवेश एवं उपभोग की समझ उसमें न हो तो लाखों रुपये भी दुर्व्यसनों की भेंट चढ़ते देर नहीं लगती। इसीलिए उन्होंने इसके मूल में व्यक्तित्व परिष्कार और संस्कारों के अभिवर्द्धन के चिंतन को रखा।

गायत्री परिवार के सत्प्रयासों के द्वारा आज सैकड़ों गाँव, पूज्य गुरुदेव के द्वारा दिए गए इस आदर्श गाँव के स्वरूप को प्राप्त कर चुके हैं। यदि इससे प्रेरणा लेकर देश के विभिन्न स्थानों में इन्हीं तरह के प्रयासों को मूर्त्त रूप देने का एक अभियान चल निकले तो गाँवों को जागते और जागते गाँवों को देखकर देश को बदलते देर नहीं लगेगी। ऐसा करने से गरीबी तो दूर होगी ही, साथ-ही-साथ भारतीय संस्कृति—जिसके मूल में संस्कार और सहकार की भावना है, उसको भी स्थापित होते समय नहीं लगेगा।

स्वाधीन भारत, आज हमसे कुछ इसी तरह के प्रयासों की माँग करता है। किसी समय सोने की चिड़िया कहलाने वाला देश, इस देश के जिम्मेदार नागरिकों से यह आह्वान करता है कि हम लोग जुटकर गरीबी के इस कलंक को भारत के माथे से धो डालें। इस संकल्प को साकार रूप देने के लिए मात्र पूज्य गुरुदेव के चिंतन को दृश्य रूप देने की आवश्यकता है। ❑

महाभारत के युद्ध के दिनों में रात्रि के समय युधिष्ठिर वेश बदलकर कहीं जाया करते थे। एक दिन शेष भाइयों को उत्सुकता हुई तो वे भी उनके पीछे चल दिए। उन्होंने देखा कि युधिष्ठिर युद्धभूमि में घायल सैनिकों के बीच घूम-घूमकर देख रहे हैं कि कहीं कोई भूखा-प्यासा तो नहीं है। वे चाहे शत्रु पक्ष के थे या स्वपक्ष के, उन्होंने सभी घायलों की समुचित सेवा की। उनके लौटने पर अर्जुन ने उनसे पूछा—"आपको वेश बदलकर यहाँ आने की क्या आवश्यकता थी?" युधिष्ठिर बोले—"अर्जुन! इनमें से अनेकों कौरव पक्ष के हैं। यदि ये मुझे पहचान जाते तो अपनी व्यथा मुझसे नहीं कह पाते।" भीम ने पूछा—"युद्ध के समय शत्रु की सहायता करना क्या उचित है?" युधिष्ठिर बोले—"भीम! मनुष्य का शत्रु, मनुष्य नहीं, बल्कि उसके स्वकृत पाप होते हैं।" नकुल-सहदेव ने पूछा—"आपने यह समय उपासना के लिए घोषित कर रखा था। क्या आपको झूठ बोलने का पाप नहीं लगेगा?" युधिष्ठिर बोले—"नहीं। भगवान की उपासना केवल जप, तप, ध्यान से ही नहीं होती, बल्कि कर्म से भी होती है।" चारों भाई युधिष्ठिर की धर्मपरायणता पर नतमस्तक हो गए।

विचारों की अतुलनीय शक्ति का जागरण

सामान्य प्रचलन में शरीर को ही शक्ति का केंद्र मानकर कार्य करने की परंपरा रही है। जब भी सामान्य वार्तालाप में शक्ति या बल शब्द का प्रयोग होता है तो अधिकांश लोग उसका अर्थ शारीरिक बल या शरीर की शक्ति से लगाते रहे हैं। विश्व के सर्वाधिक बलशालियों के नाम लिए जाते हैं तो चिंतकों से लेकर घर-परिवारों में चर्चा करते लोग—उन व्यक्तियों के नाम उनमें गिनते हैं, जिनके शारीरिक सौष्ठव को श्रेष्ठ माना जाता रहा है। पहलवानों, वेटलिफ्टरों, बॉडी बिल्डरों, पावर लिफ्टरों को शक्तिशाली मानते एवं उनकी इस आधार पर प्रशंसा करते, अनेकों देखे-सुने जा सकते हैं, परंतु ऐसे मनुष्य भी होते हैं, जिनकी अपनी शारीरिक सामर्थ्य तो ज्यादा नहीं होती, परंतु उनके आदेशों, निर्देशों व संकेतों का पालन करते बड़े-बड़े शारीरिक रूप से बलिष्ठ लोग देखे गए हैं।

महात्मा गांधी स्वयं शरीर से बहुत बलशाली नहीं थे, परंतु उनके विचारों ने लोगों में ऐसी क्रांति पैदा की कि उनका पालन करने वाले लाखों की संख्या में खड़े हो गए और देश आजादी की साँसें ले सका। चीन का प्रसिद्ध दार्शनिक लाओत्से शारीरिक रूप से बहुत शक्तिशाली नहीं था, परंतु उसके चिंतन ने संपूर्ण चीन, जापान, कोरिया को इस कदर प्रभावित किया कि वहाँ का दर्शन ही उसके नाम से जाना जाता है। आचार्य शंकर, रामानुज, मध्व, पतंजलि, कन्फ्यूशियस, कांट, रूसो, मार्क्स, हेगल इत्यादि चिंतक व दार्शनिक, संपूर्ण विश्व के प्रबुद्ध वर्ग पर अपना प्रभाव स्थापित करते दिखाई पड़ते हैं, परंतु उसका कारण उनका शारीरिक बल नहीं, अपितु विचारों की या मन की शक्ति कहा जा सकता है।

मनुष्य की वास्तविक शक्ति वस्तुतः वह नहीं, जो आँखों से दिखाई पड़ती है। मनुष्य की मुख्य शक्ति उसके मन की शक्ति है, जो उसकी बुद्धि, विचारों द्वारा संचालित होती है और संगठित एवं सुनियोजित होने पर, अपना प्रभाव पूर्णरूपेण दिखाकर रहती है। भारी-से-भारी सामान को उठाने के लिए हाथों का बलिष्ठ होना आवश्यक है, परंतु ये हाथ स्वयं यह कार्य कर पाने में सक्षम नहीं हैं। जब तक उन हाथों को मस्तिष्क द्वारा आवश्यक निर्देश न दिया जाए, हाथ, उन कार्यों को कर पाने में अक्षम रहेंगे, जिसके लिए वे अनेकों बार प्रशंसा के हकदार बनते हैं।

सत्य यही है कि शारीरिक बल का समुचित उपयोग करने के लिए मन की सृजनात्मक शक्ति की आवश्यकता पड़ती है, उसको लगाए बिना कार्य का हो पाना मुश्किल ही नहीं, नामुमकिन कहा जा सकता है। किसी भी कार्य की सफलता के लिए बुद्धिबल एवं मानसिक बल, मन की शक्ति की प्रचंड आवश्यकता है। मन की सामर्थ्य अपार है और इस शक्ति संरक्षण वर्ष में हमें अपनी मन की शक्ति को बढ़ाकर उसका उपयोग, दूसरों की उन्नति के लिए करने की आवश्यकता है। मन की शक्ति को बढ़ाने के लिए निम्न सूत्रों को अपनाने की आवश्यकता है—

(1) जीवनलक्ष्य निर्धारित करें—परमपूज्य गुरुदेव ने कहा है कि बिना उद्देश्य के मनुष्य का जीवन पेंडुलम की भाँति है, जो घूमता तो बहुत है, पर पहुँचता कहीं नहीं। मन में शक्ति है, पर जब तक शक्ति को दिशा नहीं दी जाएगी तब तक इसका कोई परिणाम निकाल पाना संभव न हो सकेगा। यदि जीवनलक्ष्य निर्धारित हो तो मन को, बुद्धि को, विचारों को उस दिशा में नियोजित कर पाना संभव हो सकता है।

जीवनलक्ष्य को निर्धारित करने के लिए सर्वप्रथम अपनी वर्तमान स्थिति पर विचार करना चाहिए और हम जीवन में कहाँ तक पहुँचना चाहते हैं, इस पर चिंतन करना चाहिए। पहला लक्ष्य छोटा एवं वास्तविक रखना चाहिए। यदि लक्ष्य बहुत बड़ा निर्धारित कर लिया गया तो उसके पूरा न हो पाने की स्थिति में, मन को व्यर्थ ही तनाव के दौर से गुजरना पड़ता है। छोटे-छोटे लक्ष्य निर्धारित करने से बड़े लक्ष्य को प्राप्त कर पाना सहजता से संभव हो पाता है।

जैसे—पी-एच.डी. करने से पहले यदि इंटरमीडिएट, बी.ए., एम.ए. को अच्छे नंबरों से उत्तीर्ण करने का लक्ष्य रखा जाए तो पी-एच.डी. की उपाधि को प्राप्त कर पाना सहजता से संभव हो पाता है। इसी प्रकार मानसिक शक्ति को विकसित करने के लिए जीवनलक्ष्य को निर्धारित करना जरूरी है, पर जीवनलक्ष्य के निर्धारण के लिए यह भी जरूरी है कि लक्ष्य छोटे एवं वास्तविक ही रखे जाएँ। प्रारंभ में ही बड़ा लक्ष्य निर्धारित कर लेने से शक्ति के अल्प होने के कारण उसमें सफलता नहीं मिलती और अंततः हताशा-निराशा को हस्तगत करना पड़ता है।

(2) विचारों को एकाग्र करना सीखें—सूर्य की किरणें बिखरी हुई हों तो उनका ताप बहुत ज्यादा महसूस नहीं होता, पर यदि आवर्धक लेंस से उन किरणों को शरीर के किसी एक स्थान पर केंद्रित कर दिया जाए तो उस तपिश को सह पाना हमारे लिए संभव न हो सकेगा। सूर्य-किरणों की केंद्रीभूत शक्ति की तरह ही एकाग्र मन की शक्ति और सामर्थ्य भी अतुलनीय है।

सामान्य रूप से व्यक्ति जीवन को बिना किसी एकाग्रता के एवं निरुद्देश्यता के साथ जीते हुए दिखाई पड़ते हैं। ऐसा करने से जीवन में न तो कोई विशिष्टता विकसित हो पाती है और न ही कोई उल्लेखनीय उपलब्धि हस्तगत हो पाती है, परंतु यदि मन को संकल्पपूर्वक, तन्मयता व एकाग्रता के साथ एक लक्ष्य विशेष की ओर लगा दिया जाए तो अद्भुत क्रांतिकारी परिवर्तन घटते दिखाई पड़ते हैं।

(3) सकारात्मक एवं पवित्र रखें मन—मन में जिस तरह के विचार जन्मते हैं, वे उसी तरह के विचारों को सूक्ष्मजगत से आकर्षित करते रहते हैं और उसी के अनुसार मनुष्य के स्वभाव, मनोदशा, व्यक्तित्व निर्मित होते चले जाते हैं। नकारात्मक सोच, दूषित मनोदशा को जन्म देती है और दूषित मनोदशा वाला व्यक्ति, पतन की ओर बिना प्रयास के अग्रसर हो जाता है। दिखने में छोटी-सी लगती भूल, जाने कब एक नासूर का स्वरूप धारण कर लेती है—इसका पता ही नहीं चलता। इसीलिए इस वर्ष, हमें इस संकल्प को धारण करने की आवश्यकता है कि हम सदा अपनी सोच को सकारात्मक एवं पवित्र रखेंगे।

(4) मनोबल बढाएँ—आशा, विश्वास, दृढ़ता, तन्मयता, कर्मठता, धैर्य और कष्टों को सहने की क्षमता, बढ़े मनोबल या मानसिक शक्ति के लक्षण हैं। मन को संतुलित रखने वालों में देखते-देखते इन गुणों का प्रादुर्भाव होने लगता है और उनकी मानसिक शक्ति शतगुणित होने लगती है।

इन गुणों से मन की शक्ति कुछ ऐसी हो जाती है, जैसे—प्रचंड झंझावात का प्रवाह हो तो उसके आगे क्षुद्र मनोवृत्तियों को पनपने का अवसर नहीं मिल पाता। ऐसा शक्तिशाली मन जहाँ लग जाता है, वहाँ पर स्वतः सफलता के मार्ग खुलने लगते हैं। इन गुणों को धारण करने के इच्छुक व्यक्तियों को अपने मन से निराशा, उद्विग्नता, चंचलता, ईर्ष्या जैसे विचारों को त्याग देना चाहिए; क्योंकि ये अवगुण मन को अशक्त एवं चंचल बनाते हैं। मन को गुणवान बनाने से ही मन की शक्ति बढ़ती एवं विकसित होती है।

(5) मन को अपना मित्र बनाएँ—यदि मन को अपना मित्र बनाकर, उसकी दिशा को सुनियोजित किया जा सके तो जो काम कठिन तपश्चर्या से संभव नहीं हो पाता, वह क्षण भर के मानसिक सहयोग से संभव हो जाता है। मन को अपना मित्र बनाने के लिए उसको विवेकशील बनाना जरूरी है। जिन्होंने भी अपने विवेक को जाग्रत किया व मन को अपना मित्र बनाया, वे सभी अपने-अपने जीवन में महामानवों के स्तर का कार्य कर सके। अपने सोये मन को सावधान करें, जगाएँ, तब ही इससे वो कार्य करवा पाने संभव हो सकेंगे, जिन्हें अद्भुत व अनुपम कहा जा सके।

सारांश यही है कि बाहर की शक्ति पर सभी की दृष्टि जाती है, पर विचारों की प्रचंड शक्ति, मन की अतुलनीय सामर्थ्य जो हमारे भीतर विद्यमान है उस ओर हमारी निगाहें नहीं जा पातीं। जितना समय, श्रम व प्रतिभा का नियोजन हम अपने शारीरिक बल को बढ़ाने में, करते हैं, उससे कहीं ज्यादा प्रयत्न व प्रयास हमें अपने मन की शक्ति को जाग्रत एवं सुनियोजित करने में लगाने की जरूरत है।

यदि परमपूज्य गुरुदेव द्वारा दिए गए उपरोक्त सूत्रों को अपनाकर मन की सुषुप्त शक्ति को जगाया जा सके तो यह वर्ष, हमारे भीतर एक ऐसी क्रांति को जन्म देगा, जिसका प्रवाह व ऊर्जा, इस संपूर्ण विश्व को एक प्रेरणादायी प्रकाश के आलोक से सिक्त कर देगी। इसी संकल्प के साथ अपने मन एवं विचारों की अतुलनीय शक्ति के जागरण का प्रयास हमें करना चाहिए। ❑

हिमालय के पावनतम शिखरों में से एक केदारनाथ की तराई में ही ऋषि अग्निहोत्र का आश्रम था। वर्षों की अखंड समाधि के बाद ऋषिवर अभी-अभी शिवरात्रि की पुण्यवेला में हिमालय से उतरकर अपने आश्रम को लौटे थे। उनके धवल, उन्नत व सौष्ठव शरीर की कांति देखते ही बनती थी। ऐसा लगता था मानो भूतभावन भगवान भोलेनाथ स्वयं ऋषि रूप में अपने भक्तों पर, शिष्यों पर अपना अनुग्रह बरसाने आए हों।

उनके रोम-रोम से एक अजस्र ज्योतिधारा बहे जा रही थी और उस धारा में बहे जा रहे थे वे सौभाग्यशाली ऋषिकुमार, शिष्यगण जो लंबी प्रतीक्षा के बाद अपने आराध्य के दर्शन कर रहे थे एवं उनका सान्निध्य पा रहे थे। उनके पद्मनाभ से पद्म की अलौकिक सुगंध पूरे आश्रम परिसर में फैल रही थी। उनके नेत्रों से मानो तप की अग्नि ज्योति बनकर बह रही थी और सभी ऋषिकुमारों को आनंदित, आह्लादित व पुलकित किए जा रही थी। योगशास्त्रों में वर्णित योगसिद्ध, स्थितप्रज्ञ के सारे लक्षण, भाव दशा, देह दशा आज उनमें अभिव्यक्त हो रहे थे। आज सचमुच श्वेताश्वतर उपनिषद् 2/12 के मंत्र ऋषिवर के व्यक्तित्व में दृश्यमान तथा दृष्टिगोचर हो रहे थे।

न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः।
प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥

अर्थात—योगाभ्यास करने वाले योगी के शरीर में न तो रोग होता है, न बुढ़ापा आता है। वह योगरूपी अग्निमय शरीर को प्राप्त करता है। आज उनके अग्निमय शरीर की आभा से शिष्य ही नहीं, बल्कि सारा आश्रम परिसर आह्लादित हो रहा था। उस आभामंडल में मनुष्य की कौन कहे, हिंसक पशु-पक्षी भी अपना वैर-भाव त्यागे जा रहे थे, भूले जा रहे थे और वास्तव में महर्षि पतंजलि के योगसूत्र 2/35 का यह मंत्र चरितार्थ हो रहा था—

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः॥

अर्थात—जब योगी का अहिंसा भाव पूर्णतया दृढ़स्थिर हो जाता है, तब उसके निकटवर्ती हिंसक जीव भी वैर-भाव से रहित हो जाते हैं। आज सचमुच गीता—2/54 में अर्जुन द्वारा भगवान श्रीकृष्ण से पूछे गए इस प्रश्न के उत्तर के जीवंत प्रतीक बनकर ऋषिवर प्रस्तुत थे—

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्॥

अर्थात—हे केशव! समाधि में स्थित परमात्मा को प्राप्त हुए स्थिरबुद्धि पुरुष का क्या लक्षण है? वह स्थिर बुद्धि पुरुष कैसे बोलता है, कैसे बैठता है और कैसे चलता है? आज हर शिष्य एवं ऋषिकुमार के समक्ष इन सभी प्रश्नों के उत्तर के रूप में ऋषिवर दृश्यमान हो रहे थे।

जब व्यक्ति आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट हो जाता है, सभी कामनाओं का त्याग कर देता है, सर्वज्ञ स्नेहरहित हुआ शुभ या अशुभ वस्तु को पाकर भी न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है, तब मान लेना चाहिए कि उसकी बुद्धि स्थिर है। समाधि में परमात्मा का दर्शन होते ही उसकी आसक्ति समाप्त हो जाती है। यह ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की स्थिति है। इसको प्राप्त होकर वह योगी कभी मोहित नहीं होता और सदैव इसी ब्राह्मीभाव में स्थिर होकर ब्रह्मानंद की अनुभूति करता है।

आज ऋषिवर की शांत, प्रशांत भावभंगिमा, चेहरे पर बुद्धपुरुषों-सा अपूर्व तेज देखकर हर कोई ब्रह्मपुरुष, बुद्धपुरुष के सान्निध्य की अनुभूति कर रहा था। आज वे अणिमा, लघिमा, महिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व, ईशित्व आदि अष्टसिद्धियों के स्वामी बने बैठे थे, पर उनमें अहंकार का लेश मात्र भी न था; क्योंकि वे इन सिद्धियों के मोह से परे हो चुके थे, वे तो देह में रहते हुए भी विदेह हो चुके थे।

ऋषिवर मौन थे। उनके अधरों पर स्वर्गीय मुस्कान अठखेलियाँ कर रही थी। आज वे मानो मौन रहकर ही अपने शिष्यों पर शक्तिपात कर रहे थे, स्नेह-संचार कर रहे थे। अपार आनंद में डूबे ऋषिकुमारों के मुख से भी आज कोई शब्द नहीं निकल रहे थे। वे चाहकर भी कुछ बोल नहीं पा रहे थे; क्योंकि उस प्रशांत आभामंडल की

चिर शांति, प्रशांति ही इतनी प्रगाढ़ थी कि व्यक्त-अव्यक्त सब एक हो चले थे। इस प्रेमवर्षा में शिष्यों, समस्त ऋषिकुमारों के चित्त शुद्ध हुए जा रहे थे। वे गुरुवर के इस मौन रहस्य को खूब समझ रहे थे; क्योंकि वह प्रशांति अब उनके भीतर भी उतरकर उन्हें अपने आगोश में लिए जा रही थी। नेत्रों से आँसुओं की अविरल धारा बहे जा रही थी और उन आँसुओं में बहे जा रहे थे—उनके जन्म-जन्मांतरों के सभी चित्तविकार, संस्कार। चित्त निर्मल होते ही शिष्यों की आनंदानुभूति, ब्रह्मानुभूति गहरी और अधिक गहरी होती जा रही थी।

गुरुवर के नेत्रों से निकल रही ब्रह्मज्योति अब शिष्यों के नाभिकमल में प्रवेश कर रही थी। उसके प्रवेश करने की अनुभूति, सिहरन, गुदगुदी एक अपूर्व थिरकन, पुलकन उनके स्थूलशरीर में हो रही थी। उनका नाभिकमल खिल चुका था। स्थूलशरीर के जागरण के साथ ही वह प्रकाशधारा, अग्निधारा, ब्रह्मधारा हृदय चक्र में प्रवेश पा रही थी। सूक्ष्मशरीर के समस्त क्लेशों, विकारों से उन्हें मुक्ति मिल रही थी।

ब्रह्मकमल खिलते ही अब वह ब्रह्मधारा बरसने लगी और सहस्रदलकमल खिल उठे। कारणशरीर ब्रह्मज्योति से जगमगा उठा। चित्त की सदा-सर्वदा के लिए श्रद्धा में स्थिति हो गई, बोधत्व की प्राप्ति हो गई। गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस विषय में ठीक ही कहा है—

भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥

अर्थात—श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप श्री पार्वती जी और श्री शंकर जी की मैं वंदना करता हूँ, जिनके बिना सिद्धजन अपने अंतःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते। आज गुरुकृपा से सभी ऋषिकुमार धन्य-धन्य हो चुके थे। वे मौन थे, फिर भी बारंबार उनके अधरों पर चुपके-चुपके ये शब्द ही आ रहे थे—हे गुरुदेव! हे आराध्य! हम धन्य हैं कि हम आपके हैं और आप हमारे हैं। हे गुरुवर! हम आपको सदा प्रणाम करते हैं, बारंबार प्रणाम करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि आप हमारे जीवन को सन्मार्ग की ओर लेकर चलें। ❑

एक साधु नदी के तट पर एक छोटी-सी कुटिया में रहकर भजन-साधना में लीन रहते थे। उन्होंने जीवन में कभी असत्य न बोलने का संकल्प लिया था। एक दिन वे उपासना में लीन थे कि एक स्त्री-पुरुष को बचाओ-बचाओ की गुहार लगाते हुए आते हुए देखा। दोनों बाईं ओर के जंगल में झाड़ियों में विलीन हो गए। कुछ ही देर बाद हाथों में तलवार लिए हुए डाकू वहाँ पहुँचे। उनके सरदार ने ऋषि कौशिक से पूछा—"महाराज! क्या आपने एक स्त्री-पुरुष को इधर आते हुए देखा है? वे किस दिशा में गए हैं?" ऋषि समझ गए कि डाकू उनका पीछा कर रहे हैं। पहले तो वे बताने में झिझके, परंतु संकल्प की याद आते ही उन्होंने बता दिया कि वे किस दिशा में गए हैं। डाकुओं ने उन स्त्री-पुरुष को पकड़ लिया और उनकी हत्या कर दी। जब साधु की मृत्यु हुई तो उन्हें नरकवास का आदेश सुनाया गया। उन्होंने धर्मराज से कहा—"मैंने जीवनपर्यंत साधना, भजन किया, सत्य-संकल्प का पालन किया, फिर भी मुझे नरक क्यों ले जाया जा रहा है?" धर्मराज बोले—"सत्य व असत्य, धर्म व अधर्म का निर्णय विवेक के द्वारा किया जाता है। तुम्हारे द्वारा बोले गए सत्य के कारण एक स्त्री-पुरुष की असमय मृत्यु हो गई। इसलिए तुम्हें नरक भोगना पड़ेगा।"

पर्व विशेष

स्नेह के बंधन का आया पर्व

रक्षाबंधन का त्योहार प्रेम के साथ स्नेहबंधन व रक्षा के संकल्प-भाव को लेकर आता है। यह त्योहार— राखी यानी रक्षासूत्र के बिना पूरा नहीं होता और यह राखीरूपी रक्षासूत्र तब अधिक प्रभावशाली हो जाता है, जब यह मंत्रों के साथ बाँधा जाता है। रक्षासूत्र बाँधने का प्रसिद्ध मंत्र है—

येन बद्धो बली राजा, दानवेन्द्रो महाबलः।
तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षे! मा चल! मा चल!!

इस मंत्र का अर्थ इसकी कथा में छिपा हुआ है, जिसका उल्लेख पुराणों में मिलता है। वामन पुराण के अनुसार, एक बार जब भगवान विष्णु ने वामन अवतार लेकर राजा बलि से तीन पग में उनका सब कुछ ले लिया, तब राजा बलि ने भगवान विष्णु से एक वरदान माँगा। वरदान में बलि ने विष्णु भगवान को पाताल में उनके साथ निवास करने का आग्रह किया। भगवान विष्णु को वरदान के कारण पाताल में जाना पड़ा। इससे देवी लक्ष्मी को बड़ी परेशानी हुई। लक्ष्मी जी भगवान विष्णु को राजा बलि से मुक्त करवाने के लिए वेश बदलकर पाताल पहुँच गईं। देवी लक्ष्मी ने बलि को भाई बना लिया और एक रक्षासूत्र बलि की कलाई में बाँध दिया।

राजा बलि ने जब लक्ष्मी जी से कुछ माँगने के लिए कहा, तब माँगस्वरूप लक्ष्मी जी ने भगवान विष्णु को पाताल से वैकुंठ जाने के लिए कहा। बहन की बात रखने के लिए बलि ने भगवान विष्णु को देवी लक्ष्मी के साथ वैकुंठ विदा कर दिया। तब भगवान विष्णु ने बलि को यह वरदान दिया कि चातुर्मास्य की अवधि में वे पाताल में आकर निवास किया करेंगे। इसके बाद से हर साल चार महीने भगवान विष्णु पाताल में रहते हैं। इस घटना को स्मरण रखने के लिए ही रक्षासूत्र का मंत्र बना। इस मंत्र का अर्थ है कि जिस रक्षासूत्र से महान शक्तिशाली दानवेंद्र राजा बलि को बाँधा गया था, उसी रक्षाबंधन से मैं तुम्हें भी बाँधता हूँ/ बाँधती हूँ। हे रक्षे (रक्षासूत्र) ! तुम स्थिर रहना, स्थिर रहना।

रक्षाबंधन के पर्व पर हम अपने परंपरागत मूल्यों से ऊर्जा ग्रहण करते हैं और उससे अपने जीवन को अनुप्राणित करते हैं। रक्षा करने का भाव एक ऐसा भाव है, जो हमें अपने कर्त्तव्य को निभाने की प्रेरणा तो देता ही है, वहीं दूसरों को भी निर्भयता प्रदान करने की स्वतंत्रता देता है। रक्षाबंधन का त्योहार हालाँकि भाई-बहन के प्रेमपूर्ण संबंधों और भाई द्वारा बहन की रक्षा के संकल्प तक ही सीमित रह गया है, लेकिन इस त्योहार के पीछे व्यापक संदेश निहित है। इसमें बहन की रक्षा, परिवार की रक्षा, समाज की रक्षा, देश की रक्षा, पर्यावरण की रक्षा, अपनी संस्कृति की रक्षा आदि भाव सम्मिलित हैं।

रक्षाबंधन शब्द में प्रयुक्त बंधन शब्द किसी संकल्प से बँधे हुए होने का सूचक है, लेकिन यह अत्यंत सकारात्मक भाव को लिए हुए है। अच्छे प्रयोजन के लिए स्वयं को या किसी को बंधन में बाँधना—निजी स्वतंत्रता का सूचक है। यह हमारी आत्मिक स्वतंत्रता की ओर इंगित करता है। रक्षाबंधन हमें स्वतंत्रता देता है कि हम इस दायित्व बोध के योग्य बनें, ताकि हम अपने पराक्रम व अपनी प्रतिभा द्वारा दूसरों की रक्षा कर सकें।

बहन अपने भाई को जो रक्षासूत्र बाँधती है, तो इसके माध्यम से भाई उसे अभय प्रदान करता है, इससे बहन स्वतंत्रता का अनुभव करती है। देश के हमारे सैनिक भी देश की रक्षा का संकल्प लेकर उसे अभय प्रदान करते हैं। हमारे पौराणिक आख्यानों में रक्षाबंधन का संबंध—रक्षा करने से ही है। एक पौराणिक कथा के अनुसार, देवासुर संग्राम में एक बार जब देवता हारने लगे, तब वे देवराज इंद्र के पास गए। देवताओं को भयभीत देखकर इंद्राणी ने उनके हाथों में रक्षासूत्र बाँध दिया। इससे देवताओं का आत्मविश्वास बढ़ा और उन्होंने दानवों पर विजय प्राप्त की। मान्यता है कि तभी से रक्षा के लिए राखी बाँधने की प्रथा शुरू हुई।

महाभारत काल में द्रौपदी द्वारा श्रीकृष्ण को राखी बाँधने का वृत्तांत मिलता है। महाभारत में ही रक्षाबंधन से

संबंधित कृष्ण और द्रौपदी का एक और घटनाक्रम मिलता है, जब श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का वध किया, तब उनकी तर्जनी उँगली में चोट आ गई थी, द्रौपदी ने उस समय अपनी साड़ी फाड़कर उनकी उँगली पर पट्टी बाँध दी थी। वह दिन भी श्रावण मास की पूर्णिमा का दिन था।

पुराणकथाओं के अनुसार, भगवान विष्णु ने वामन अवतार धारण कर राजा बलि के अभिमान को रक्षाबंधन के दिन ही चकनाचूर किया था। इसलिए यह त्योहार बलेव नाम से भी प्रसिद्ध है। महाराष्ट्र में नारियल पूर्णिमा या श्रावणी के नाम से भी यह त्योहार जाना जाता है। इस दिन लोग नदी या समुद्र के तट पर अपने जनेऊ बदलते हैं। रक्षाबंधन से संबंधित कुछ अन्य प्रसिद्ध ऐतिहासिक विवरण भी मिलते हैं, जैसे—इसी दिन चित्तौड़ की रानी कर्मवती ने मुगल बादशाह हुमायूँ को राखी भेजकर उसे अपना भाई बनाया था और वह भी संकट के समय उनकी रक्षा के लिए चित्तौड़ आ पहुँचा था।

यह कोई जरूरी नहीं कि भाई-बहन के मधुर रिश्ते केवल पारिवारिक संबंधों में ही पनपते हैं। परिवार के दायरे से बाहर जाकर भी ये रिश्ते पनपते हैं और अपना महत्त्व दरसाते हैं। उदाहरण के लिए सूर्यकांत त्रिपाठी निराला जी और महादेवी वर्मा के बीच भाई-बहन का रिश्ता था। रक्षाबंधन के त्योहार के दिन निराला जी महादेवी जी के घर आते थे और उनसे राखी बँधवाते थे। इस तरह श्रावणी पर्व 'रक्षाबंधन' समाज में एक दिव्य व पवित्र वातावरण का निर्माण कर देता है। इस दिन एक ओर जहाँ बहनों के मन में भाइयों को तिलक करके राखी बाँधने व मिष्टान्न खिलाकर मुँह मीठा करने का भाव होता है, वहीं भाइयों के अंदर बहन को खुश करने व उनकी सुरक्षा का दायित्वबोध लेने का भाव भी मन में पनपता है। ❑

संतों के कुल में जन्मे भक्त पुंडरीक गृहस्थ धर्म का निर्वहन करते हुए भी भगवान के प्रति अनन्य भक्ति रखते थे। त्रिकाल संध्या, भगवान विष्णु का निरंतर चिंतन उनका नित्य का क्रम था। धीरे-धीरे उन्हें संसार से वैराग्य हो गया और एक दिन वे भगवद्प्राप्ति हेतु घर से निकल पड़े। तीर्थाटन करते हुए वे भगवद्भजन में लीन रहने लगे। भगवान अपने भक्तों का सदैव ध्यान रखते हैं, इसलिए उन्होंने नारद जी को पुंडरीक का मार्गदर्शन करने के लिए भेजा। नारद जी ने पुंडरीक को 'ॐ नमो नारायणाय' मंत्र का जप करने का सुझाव दिया।

पुंडरीक ने ऐसा ही करना आरंभ कर दिया। इसके परिणामस्वरूप उनका मन व उनकी बुद्धि भगवान में लीन हो गए और साथ ही उनके शरीर में भी ईश्वरीय चेतना के अवतरण के लक्षण दिखने लगे। कहते हैं कि उनकी देह श्याम वर्ण की हो गई, उनकी चार भुजाएँ हो गईं, उनके हाथों में शंख, चक्र, पद्म और गदा आ गए और उनके वस्त्र पीतांबर हो गए। एक तेजोमंडल ने उनके शरीर को घेर लिया। उनको प्रत्येक जीव में भगवद्दर्शन होने लगे। भगवान ने उन्हें वर माँगने को कहा। भक्त पुंडरीक बोले—"प्रभु! आपके दर्शनों के पश्चात और कोई अभिलाषा शेष नहीं है। जिसमें मेरा कल्याण हो, वही आप करें।" भगवान ने पुंडरीक को हृदय से लगा लिया और बोले—"वत्स! तुम मेरे साथ चलो। अब तुम मेरे धाम में मेरे समीप, मेरी लीला में सहयोग देते हुए वहीं निवास करो।" इतना कहकर भगवान विष्णु भक्त पुंडरीक को अपने साथ ले गए।

ध्यान-एक आध्यात्मिक शल्य चिकित्सा

ध्यान मन की शांत अवस्था का नाम है। जब मन एकाग्र, स्थिर एवं शांत हो जाता है तो उस अवस्था को ध्यान कहते हैं। ध्यान एक ऐसी विधि है; जिसमें मन एकाग्र होता है, मन स्थिर होता है, मन शांत होता है। ध्यान से ही ऐसा संभव है; क्योंकि सामान्य स्थिति में मन की लहरें उठती-गिरती रहती हैं और इन लहरों की वजह से मन अस्थिर, चंचल एवं व्यग्र रहता है।

ध्यान एक आध्यात्मिक शल्य चिकित्सा भी है। लेजर बीम के समान मन की ऊर्जा को—मानसिक ऊर्जा को एक दिशा में प्रवाहित करने का कार्य ध्यान के माध्यम से संपन्न हो पाता है। इसके माध्यम से हम मानसिक ऊर्जा में एक तरह का पैनापन पैदा करते हैं और उन एकाग्र मानसिक किरणों के द्वारा फिर आध्यात्मिक शल्य चिकित्सा संपन्न की जाती है। ध्यान से अनगिनत लाभ होते हैं। वैज्ञानिकों ने इन लाभों को अपने प्रयोग-परीक्षणों एवं अन्वेषण-अनुसंधानों से सिद्ध किया है।

ध्यान के लिए सर्वप्रथम धारणा होनी चाहिए। महर्षि पतंजलि कहते हैं—**'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'** (विभूतिपाद-3/1) धारणा अर्थात मन में एक विचार, एक भाव स्थिर होने लगे। ऐसा होने से मन में एकाग्रता और स्थिरता आने लगती है। मन का एक जगह स्थिर हो जाना ही धारणा है। जब मन एक भाव में, एक विचार में, एक शब्द, एक मंत्र में टिकने लगता है, स्थिर होने लगता है तो धारणा होने लगती है। पतंजलि आगे कहते हैं कि जब धारणा होने लगती है तो ध्यान भी होने लगता है—**'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्'** (विभूतिपाद-3/2)। जहाँ चित्त स्थिर हो जाए, उसी विषय पर चित्तवृत्ति का निरंतर प्रवाहित होना ध्यान है। मन एक ही प्रवाह में बहता रहे, धारणा पक्की हो जाए तो ध्यान सधने लगता है। जब धारणा पक्की हो जाएगी व मन का प्रवाह एक ही दिशा में बहता रहेगा तो ध्यान पक्का हो जाएगा।

महर्षि पतंजलि कहते हैं—**'ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः'** (साधनपाद-2/11) क्लेशों की वृत्तियाँ ध्यान के द्वारा नाश करने योग्य हैं। वृत्तियाँ यानी कि मन की लहरें जो सदा तरंगित होती रहती है, कभी भी स्थिर नहीं होती हैं। उन लहरों को स्थिर, एकाग्र एवं शांत करना ही ध्यान है। मन स्वाभाविक रूप से चंचल है। यह चंचलता उसके भीतर लहरें पैदा करती है और इस चंचलता से मानसिक ऊर्जा का सतत क्षरण होता रहता है। जब इस ऊर्जा के क्षरण को रोक लिया जाता है और उसे संरक्षित करके एक ही विचार एवं भाव में प्रक्षेपित कर दिया जाता है तो उसे ध्यान कहते हैं।

ध्यान को एक आध्यात्मिक शल्य क्रिया इसलिए कहते हैं; क्योंकि जिस प्रकार सामान्य शल्य क्रिया में चीर-फाड़ की जाती है, उसी प्रकार ध्यान के माध्यम से भी चित्त के दोषों का परिमार्जन किया जाता है। लेजर किरणों से भी शल्य क्रिया की जाती है। यहाँ पर लेजर किरणें चाकू, छुरी एवं कैंची का काम करती हैं। एक मशीन से लेजर किरणें पैदा होती हैं। इन किरणों में ऊर्जा होती है और जहाँ भी ऑपरेशन किया जाता है, उन्हें वहाँ तक पहुँचा देते हैं। इस प्रकार बिना घाव के, बिना चीर-फाड़ करके ऑपरेशन किया जाता है। ध्यान में भी इसी प्रकार बिना कोई शारीरिक घाव किए मन को बदलने की प्रक्रिया संपन्न की जाती है।

मनुष्य का मन चंचल है, बिखरा हुआ है, अस्थिर है, इसलिए हम मन की ऊर्जा का उपयोग नहीं कर पाते हैं। सबसे पहले मन को लेजर किरणों की तरह साधने की आवश्यकता होती है। मन की किरणों के अंदर वह धार एवं पैनापन पैदा किया जाता है, उसमें वह ऊर्जा एवं तीव्रता पैदा की जाती है कि वह लेजर किरणों के समान तीक्ष्ण हो जाए। इस प्रक्रिया का आरंभ धारणा से करते हैं अर्थात मन को पहले एक जगह पर स्थिर करते हैं, फिर उसे अभीष्ट लक्ष्य की ओर धीरे-धीरे बढ़ने देते हैं। यहाँ मन की स्थिरता धारणा है और उसका एक लक्ष्य की ओर सतत बहना या बढ़ना ध्यान है। ध्यान जब प्रगाढ़ हो जाता है और ध्यान में केवल ध्येय मात्र की ही प्रतीति होती है तो उसे समाधि कहते हैं।

धारणा प्रगाढ़ हुई तो ध्यान होता है और ध्यान की प्रगाढ़ता में समाधि सिद्ध होती है। यह सब संभव हो पाता है—मन की ऊर्जा के बिखराव को रोकने से और उसे संरक्षित करके एक दिशा में बहा देने से। मन की ऊर्जा को बिखराव से रोकना व फिर उस ऊर्जा को संगृहीत करके उसे एक दिशा दे देना—ध्यान का मूल उद्देश्य है। मानसिक ऊर्जा की एकाग्रता से अद्भुत एवं अचंभित कर देने वाले कार्यों का क्रियान्वन संभव है।

मानसिक ऊर्जा के प्रभावों का अध्ययन पैरासाइकोलॉजी कहलाता है। इसमें मानसिक ऊर्जा की एकाग्रता के द्वारा घटने वाले चमत्कारों का अध्ययन किया जाता है। सामान्य मनोविज्ञान के क्षेत्र में व्यवहार, मन का संतुलन एवं व्यक्तित्व आते हैं। मानसिक ऊर्जाओं का संबंध सामान्य मानवीय व्यवहार में नहीं आ पाता है। इस संदर्भ में प्रख्यात मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने अचेतन की अवधारणा दी थी, जो हमारे मन की निचली परतों में होता है। यह हमारे व्यवहार को प्रभावित करता है। अचेतन हमारे सपनों को भी प्रभावित करता है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार, जो भी दिन भर सोचा वह रात में सपनों में आ जाता है, परंतु व्यवहार विज्ञान एवं परामनोविज्ञान से आगे है—आध्यात्मिक मनोविज्ञान। ध्यान, आध्यात्मिक मनोविज्ञान का विषय है।

ध्यान में मन को, चित्त को ऊर्जावान बनाया जाता है। फ्रायड के अनुसार, इस जीवन में बचपन से लेकर अब तक जो कुछ किया गया है, वह सब मन में संगृहीत है। महर्षि पतंजलि कहते हैं कि बात यहीं तक सीमित नहीं है। चित्त में अब तक के सभी जन्मों के संस्कार संगृहीत होते हैं। फ्रायड के अचेतन की अवधारणा बचपन से लेकर अब तक के जीवन तक ही सीमित है। इससे बढ़कर महर्षि पतंजलि ने जो चित्त की अवधारणा दी है, उसका दायरा अब से पूर्व के सारे जन्मों तथा आने वाले सभी जन्मों को अपने में समेटे हुए है।

इस चित्त में संस्कारों का जखीरा है। ये संस्कार बड़े विचित्र से होते हैं और हमारे जीवन को कुछ अद्भुत-सा मोड़ देते हैं, मोड़ लाते हैं। शुभ संस्कार उदय होते हैं, तो हमारे जीवन में शुभ घटनाक्रम, सुखद अनुभूतियाँ होती हैं और अगर संस्कार अशुभ हुए तो अशुभ घटनाक्रम, अशुभ परिस्थितियाँ, अशुभ का अँधेरा छा जाता है। ध्यान इन्हीं संस्कारों की चिकित्सा करता है। ध्यान से चित्त में संगृहीत संस्कारों की चिकित्सा की जाती है।

ध्यान चिकित्सा का अध्ययन एवं अन्वेषण अब पाश्चात्य जगत में भी होने लगा है। सन् 1970 में जब अमेरिका के एक मनोवैज्ञानिक डॉ० रिचर्ड डेविडसन ने भारतीय योग और ध्यान की ताकत पर शोध प्रारंभ किया था, तब वे उपहास के पात्र बन गए थे, परंतु अब इसे संयुक्त राष्ट्र तक मान्यता प्रदान करता है। यहाँ तक कि अनेक प्रसिद्ध वैज्ञानिक इसी क्षेत्र में अपने अनुसंधान-अन्वेषण करते दिखाई पड़ते हैं। इनके अन्वेषणों का निष्कर्ष यह बताता है कि ध्यान से असाध्य शारीरिक बीमारियों में आश्चर्यजनक लाभ मिलता है, मन की ताकत में बढ़ोत्तरी होती है, यहाँ तक कि मस्तिष्क की संरचना में भी सकारात्मक बदलाव संभव होता है।

डेविडसन ने विस्कान्सिन यूनिवर्सिटी में ध्यान एवं उसके प्रभाव पर अध्ययन किया था। मैसाचुसेट्स जनरल हॉस्पिटल व हार्वर्ड मेडिसिन स्कूल में होने वाले एक अन्य शोध में यह पाया गया कि ध्यान से मानवीय मस्तिष्क में संरचनात्मक बदलाव आते हैं। शोधकर्त्ताओं ने पाया कि यदि आठ सप्ताह तक प्रतिदिन आधा घंटे तक ध्यान किया जाए तो न केवल मस्तिष्क के याददाश्त वाले भाग की संरचना में बदलाव आता है, बल्कि अनुभूति करने, हमदर्दी दिखाने वाले हिस्से में भी बड़े बदलाव आते हैं। इस अध्ययन करने वाली टीम का नेतृत्व डॉ० ब्राइटा होजल ने किया था। एक और प्रयोग में अमेरिका के विस्कान्सिन यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिकों ने पाया कि ध्यान से इनसान में सहानुभूति, दया, प्रेम, शांति और करुणा के भाव पैदा होते हैं। इनका कहना है कि ध्यान से नकारात्मक भाव कम होते हैं और सकारात्मक भाव पैदा होते हैं।

ध्यान के प्रभाव का परीक्षण करने वाले डॉ० ब्राइटा होजल ने उन बौद्ध भिक्षुओं के मस्तिष्क की जाँच की थी, जिनकी दैनिक साधना में ध्यान सम्मिलित था। उनके मस्तिष्क का हिप्पोकैंपस क्षेत्र काफी विकसित था। यह भाग याददाश्त एवं स्मृति से संबधित है। ध्यान से मस्तिष्क के वे हिस्से घटे दिखाई पड़े, जो चिंता, अवसाद एवं तनाव के क्षेत्र थे। इससे स्पष्ट होता है कि ध्यान एक चिकित्सा है, जिसके माध्यम से चित्त के संस्कारों का शमन किया जा सकता है। ऐसा करने से ही जीवन में रूपांतरण संभव है। ध्यान के माध्यम से मन को शांत, स्थिर एवं एकाग्र कर जीवन में अनेक लाभ प्राप्त किए जा सकते हैं। ❑

अंतर्यात्रा विज्ञान के प्रयोग स्पष्ट करते हैं कि चित्त में जिसका प्रतिबिंब पड़ता है, वह उसी रंग में रँगता रहता है। इस स्पष्टता को समझकर विचार किया जा सकता है कि अपने चित्त को हम अब तक किन रंगों से रँगते आए हैं। व्यक्ति, वस्तु, विचार, दृश्य और वे सभी घटनाक्रम जो अब तक हमारे चित्त में प्रतिबिंबित होते आए हैं, इन सबने चित्त को अपने रंग में रँगा है। इनसे जुड़ी भावनाएँ, राग-द्वेष सबने चित्त में अपना अंकन किया है।

एक बार नहीं, बल्कि अनेकों बार हमारा अपना चित्त इन सब रंगों से रँगा गया है और अब वर्तमान क्षण के आने तक ये सभी रंग इतने गाढ़े और गहरे हो गए हैं कि स्वयं का, चित्त का अपना रंग खो गया है। पता ही नहीं चल पाता कि इसकी अपनी वास्तविकता क्या है? इसका सत्य, इसका यथार्थ क्या है? अनेकानेक सत्यों का ज्ञान कराने वाले चित्त का, स्वयं का सत्य पता चलना मुश्किल हो गया है। अब तो स्थिति यह है कि जिस चित्त में सब कुछ प्रतिबिंबित होता रहता है, उसमें स्वयं हम ही प्रतिबिंबित नहीं हो पाते।

इस योगकथा की पिछली कड़ी में कहा गया था कि चित्त सब अर्थों वाला है। हालाँकि, यह तब होता है, जब चित्त द्रष्टा और दृश्य में रँगता है। द्रष्टा और दृश्य के रंग में रँगकर चित्त सब अर्थों वाला हो जाता है। द्रष्टा का रंग चित्त को चेतनासंपन्न बनाता है। ऐसा होने से इसमें ज्ञानशक्ति, अनुभवशक्ति व बोधशक्ति प्रकट होते हैं। जबकि दृश्य के रंग में रँगकर वह अपने सम्मुख उपस्थित होने वाले सभी दृश्यों का ज्ञान अनुभव व बोध कर पाता है।

यद्यपि ऐसा होते हुए यह एहसास प्रायः नहीं हो पाता कि जिसे ज्ञान हो रहा है, अनुभव हो रहा है, वह ज्ञाता, अनुभवकर्त्ता व बोध पाने वाला वास्तव में द्रष्टा ही है। चित्त तो बस, अपने सम्मुख आने वाले प्रत्येक दृश्य को उसके सामने रख रहा है। ऐसे में वह बस, ज्ञान का माध्यम है, स्वयं ज्ञाता नहीं है।

सूत्रकार महर्षि पतंजलि इस सत्य को अपने अगले सूत्र में और अधिक स्पष्ट करते हैं—

तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात्॥ *4/24*

शब्दार्थ—तत् = वह (चित्त); **असंख्येय-वासनाभिः** = असंख्य वासनाओं से; **चित्रम् अपि** = चित्रित होने पर भी; **परार्थम्** = दूसरे के लिए है; **संहत्यकारित्वात्** = क्योंकि यह संहत्यकारी (मिल-जुलकर कार्य करने वाला) है।

भावार्थ—वह (चित्त) असंख्य वासनाओं से चित्रित होने पर भी, दूसरे के लिए है; क्योंकि वह संहत्यकारी अर्थात मिल-जुलकर कार्य करने वाला है।

महर्षि ने इस सूत्र में चित्त के सत्य का प्रकटीकरण किया है। इसमें कहे गए सभी सत्यों पर, सभी तत्त्वों पर गहनता से, गहराई से विचार करना आवश्यक है। इसमें मूलतः चार बातें कही गई हैं—(1) असंख्य वासनाओं से, (2) चित्रित होने पर, (3) दूसरे के लिए है एवं (4) यह मिल-जुलकर कार्य करने वाला है। अब इन चारों बिंदुओं पर विचार करना है, इनमें से प्रत्येक पर चिंतन करना है और तब सूत्र के सत्य को आत्मसात् करना है।

वासनाएँ असंख्य हैं। इनकी गिनती नहीं हो सकती। इनकी गणना नहीं की जा सकती। सामान्य परंपरा में हम वासना को काम से जोड़ लेते हैं और कामवासना शब्द का संयुक्त प्रयोग करते हैं। कामवासना को पारंपरिक प्रचलन व चिंतन में दोषपूर्ण माना जाता है। यद्यपि इस दोष से कोई भी चित्त के शुद्ध होने तक मुक्त नहीं है। हालाँकि, योगसाधक के लिए वासना ही दोषपूर्ण है; क्योंकि प्रत्येक वासना चित्त को अशुद्ध करती है। वासना का अर्थ है—चाहत। अज्ञान से, अविद्या से इसका जन्म होता है। यह मुझे मिले, यह मेरा हो जाए। तुझे कुछ न मिले, मिले भी तो मेरे से कम मिले। तेरा मेरे से बढ़कर न हो। मन में ऐसी भावनाएँ वासनाओं के कारण जन्म लेती रहती हैं।

भक्ति रस के मर्मज्ञ तुलसीदास जी रामचरितमानस में कहते हैं—**मैं अरु मोर, तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥** मैं और मेरा, तू और तेरा, यही माया है, जिसने संपूर्ण जीव समुदाय को वश में कर रखा है। अलग-अलग जीवों की अलग-अलग वासनाएँ हैं। क्षुद्र कीटों से लेकर देवों तक वासनाएँ-ही-वासनाएँ फैली हुई हैं। इनका कोई एक रंग नहीं है। जीवन के प्रत्येक तल पर इनके भिन्न-भिन्न रंग हैं।

त्रिगुणमयी प्रकृति में जीवन के असंख्य तल हैं, सृष्टि का विस्तार अनंत है। इन सभी जीवन-योनियों के भी अनंत रंग-रूप हैं और सब तरफ वासनाएँ हैं, चाहतें हैं, लालसाएँ हैं। इन सब के रंग चित्त में उपजते हैं। वासना के अनुरूप चित्त किसी दृश्य की ओर उन्मुख होता है। इस स्थिति से अलग दृश्य के अनुरूप चित्त में वासना की तरंगें उठती हैं। ये लहरें, तरंगें उठती ही रहती हैं। जाग्रति में, स्वप्न में, जीवन में और यहाँ तक कि मृत्यु के बाद भी यह क्रम कभी नहीं रुकता। तभी तो कहा गया है कि वासनाएँ असंख्य एवं अगणित हैं।

इन सबसे चित्रित होता है चित्त। बहुत पुराने समय में शरीर पर चित्रकारी कराने का चलन था। इसकी चर्चा संस्कृत काव्यों एवं नाटकों में पर्याप्त की गई है। आधुनिक युग में यह चलन फिर से लौट आया है। लोग अपने शरीर पर टैटू छपवाते हैं। कई बार तो इनकी बहुतायत हो जाती है। बस, इसी टैटू की तरह, इसी चित्रकारी की तरह प्रत्येक वासना, चित्त में चित्रित होती रहती है। हमारे न चाहने पर भी ऐसा होता रहता है। वासना का प्रत्येक रंग, इसकी प्रत्येक तरंग, इसकी हर लहर चित्त को अपने रंग में रँगती है। यह चित्रकारी वासना के आरंभ से चल रही है, चलती जा रही है और चलती जाएगी। यह तब तक होगा, जब तक हम वासना से, अविद्या से मुक्त नहीं होंगे।

वासनाएँ चाहे कितनी ही क्यों न हों, ये असंख्य हों या अगणित हों, फिर इनकी चित्रकारी चाहे कितने समय से हो रही हो और आगे चाहे कितने समय तक होती रहे—पर चित्त स्वयं इनका उपभोग नहीं कर सकता। ऐसा इसलिए, क्योंकि चित्त जड़ है, पदार्थ है। यह दृश्य है, द्रष्टा नहीं; दृश्य कैसा भी हो, इसका उपयोग दर्शन के लिए है। दृश्य अपने मनोहर या मनोरम होने का स्वयं आनंद नहीं उठा सकता। इसी तरह दृश्य भले ही कितना कुरूप हो, भयोत्पादक हो, वह स्वयं उससे भयभीत नहीं हो सकता। बस, यही स्थिति चित्त की है। वह पदार्थ होने के कारण स्वयं अपनी अनुभूति नहीं पा सकता। पदार्थ की अनुभूति चेतना पा सकती है, स्वयं पदार्थ नहीं।

चित्त के एक अन्य गुण की भी चर्चा यहाँ है। चित्त मिल-जुलकर कार्य करता है। अकेला चित्त कार्य करने के लिए सक्षम नहीं है। इसके लिए शरीर की और इंद्रियों की आवश्यकता है। इंद्रियों के झरोखे से चित्त में प्रतिबिंब बनते हैं। इसमें चित्रण होता है। ज्ञानेंद्रियाँ इसमें प्रतिबिंब बनाती हैं, इसमें चित्रण करवाने में सहायक होती हैं। फिर इसमें जो वासना की लहरें उठती हैं, उन्हें कर्मेंद्रियाँ पूरा करती हैं, तब फिर वासना साकार रूप लेती है। इस तरह चित्त मिल-जुलकर कार्य करता है।

इसे ऐसे भी समझा जा सकता है, जैसे कि वासना उठी कि स्वादिष्ट भोजन चाहिए। आटा, दाल, चावल, दही, तरकारी, मिर्च, मसाले के समुचित सम्मिश्रण से अग्नि व बरतनों के सहयोग से भोजन बन गया। अब यह भोजन कितना भी स्वादिष्ट क्यों न हो, अपना स्वाद स्वयं नहीं पा सकता। इसी तरह चित्त इंद्रियों व शरीर से, प्राण से मिल-जुलकर, वासनाओं को चित्रित करता है, इन्हें साक्षात् करता है, पर इनकी अनुभूति स्वयं नहीं कर पाता। इनकी अनुभूति का भोग तो चित्त का स्वामी पुरुष ही करता है। ❑

एक बार अमेरिकी सेना से चौबीस जवान, सेना छोड़कर भाग निकले। पकड़े जाने पर उनका कोर्टमार्शल करने का हुक्म दिया गया। जब राष्ट्रपति लिंकन को पता चला तो उन्होंने उनका मृत्युदंड रोका और बोले—"अमेरिका में पहले ही दुःखी विधवाएँ बहुत हैं, हमें उनकी संख्या में वृद्धि करने के लिए पद नहीं मिला है। इन्हें सेना से मुक्त कर दें, पर कोई और राष्ट्रहित का कार्य दे दिया जाए।" ऐसे उदारमना थे अब्राहम लिंकन।

जिस तरह शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति लोग जागरूक रहते हैं, उसी तरह मानसिक स्वास्थ्य के प्रति भी लोगों की जागरूकता जरूरी है। हमारे देश में मानसिक रूप से बीमार लोगों की तादाद तेजी से बढ़ती जा रही है और यह एक चिंता का विषय है। यह व्याधि लोगों में सामान्य स्तर से लेकर गंभीर-से-गंभीर स्तर तक है; जबकि हमारे समाज में व्यापक स्तर पर इसके प्रति लोगों का गलत नजरिया है, इसलिए मानसिक बीमारी से ग्रस्त होने पर उसका उपचार करने के बजाय उसे दबाने में ही भलाई मान ली जाती है।

वैसे भी हमारे देश में मानसिक चिकित्सा हेतु न तो पर्याप्त अस्पताल हैं और न ही पर्याप्त विशेषज्ञ और देश में सभी तक मनोचिकित्सकों की पहुँच भी नहीं है। ऐसे में जो संसाधन उपलब्ध हैं, वे मरीजों की संख्या को देखते हुए नगण्य कहे जा सकते हैं। हालाँकि देश की सरकार का इस ओर ध्यान गया है और लगभग तीन वर्ष पूर्व 8 अगस्त 2016 को राज्यसभा में 'मेन्टल हेल्थ केयर बिल' पारित भी हुआ है और अब जरूरत है कि मानसिक स्वास्थ्य के प्रति लोगों को जागरूक किया जाए और मानसिक बीमारी से ग्रस्त लोगों का उपचार कराने के लिए उन्हें प्रेरित किया जाए।

मानसिक बीमारी के प्रति लोगों में जो नजरिया है, उसे भी बदलने की जरूरत है। हमारे देश में मानसिक बीमारी को बहुत गलत दृष्टि से देखा जाता है और मानसिक रूप से बीमार व्यक्ति के प्रति भी अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता। जबकि ऐसे व्यक्ति को अधिक देख-भाल की व अपनेपन की जरूरत होती है, लेकिन उसे उतना ही अधिक तिरस्कार व बुरा व्यवहार मिलता है।

हमारे देश की लगभग 6 से 7 प्रतिशत आबादी मानसिक रोग से ग्रस्त है। इसमें 1 से 2 प्रतिशत लोग गंभीर मानसिक बीमारी यानी सिजोफ्रेनिया व बाई पोलर डिसऑर्डर से पीड़ित हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक अनुमान के मुताबिक भारत की 7 प्रतिशत आबादी अवसादग्रस्त है। शहरी क्षेत्र के 100 में से तीन लोग अवसादग्रस्त और तीन में से हरेक व्यक्ति एक गंभीर बीमारी से ग्रस्त है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यू० एच०ओ०) के अनुसार, भारत में 10 लाख लोग मात्र तीन मनोचिकित्सकों के भरोसे हैं। कॉमनवेल्थ के नियमों की तुलना में यह अनुपात 18 फीसद कम है, जिसके अनुसार, 10 लाख लोगों पर 56 मनोचिकित्सक रहने ही चाहिए।

मानसिक बीमारियाँ होने का कारण क्या है? क्या ये छुआछूत से फैलती हैं या किसी और कारण से होती हैं? तो इसका उत्तर यह है कि यह कोई छुआछूत की बीमारी नहीं है और इसके पनपने का कोई एक निश्चित कारण भी नहीं है। कई कारण हो सकते हैं, इसके पनपने के और यदि जागरूक न रहा जाए तो मानसिक बीमारी अपने गंभीर रूप में आ सकती है। आनुवंशिक गड़बड़ी, मस्तिष्क को नुकसान पहुँचाने वाले रसायनों के उद्रेक से लेकर लोगों के जीवन के हालात यानी काम का दबाव, परिजनों की मौत का सदमा, किसी भी तरह का गंभीर नुकसान, मानसिक तनाव, चिंता, आत्मग्लानि, आत्महीनता जैसे अनेक कारण हैं, जिनकी वजह से व्यक्ति मानसिक विकार की चपेट में आ जाता है।

मानसिक बीमारी के जो भी कारण हैं, वे सहज ही सबके जीवन में हैं और इनकी एक सीमा है, लेकिन जब व्यक्ति इस सीमा को पार कर जाता है तो उसे मानसिक समस्याएँ होने लगती हैं, जैसे तनाव, चिंता, काम का दबाव सहज ही सबके जीवन में है, लेकिन जब यही सब व्यक्ति के नियंत्रण से बाहर हो जाते हैं तो वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है और मानसिक विकृतियाँ उसमें उभरने लगती हैं। यदि समय रहते इनका इलाज न किया जाए और इन पर ध्यान न दिया जाए तो यही विकृतियाँ इतना गंभीर रूप ले लेती हैं, जिसका इलाज करना लगभग असंभव-सा हो जाता है।

देखा जाए तो मानसिक बीमारियों के जो भी कारण हैं, वो घर-परिवार के दायरे में ही अधिक पनपते हैं। यदि घर-परिवार का माहौल नकारात्मक है, वहाँ झगड़े,

गाली-गलौज अधिक होते हैं, बात-बात पर झिड़कियाँ, ताने मिलते हैं, बच्चों व बड़ों के प्रति अच्छा व्यवहार नहीं किया जाता है, भावनाओं को पर्याप्त पोषण नहीं मिलता, अपनत्व व अपनेपन का अभाव होता है, आपसी विश्वास की कमी होती है, परिवार के सदस्यों में ही शंका व संदेह होता है, लोगों की भावनाओं को दबाया जाता है, भावनाओं की अभिव्यक्ति पर नियम-कायदों की पाबंदी होती है, तो ऐसे घर के माहौल में घुटन व बेचैनी अधिक महसूस होती है और ऐसे परिवार में मानसिक बीमारियों के पैदा होने की संभावनाएँ ज्यादा होती हैं। जाहिर-सी बात है कि यदि ऐसे माहौल में कोई व्यक्ति मानसिक रूप से बीमार हो जाए तो उसके प्रति अन्य लोगों का व्यवहार अच्छा नहीं होगा और इसके कारण उसकी बीमारी में सुधार की संभावनाएँ कम होंगी।

सामान्य तौर पर यह माना जाता है कि दिमागी समस्या यानी मानसिक बीमारी तंत्रिकासंचारक (न्यूरोट्रांसमीटर) या उन रसायनों में गड़बड़ी की वजह से आती है, जो दिमाग के सुचारु कामकाज के लिए जिम्मेदार होते हैं। उदाहरण के लिए—अगर कोई व्यक्ति अवसादग्रस्त है, तो उसके न्यूरोट्रांसमीटर सिरोटोनिन का स्तर एक स्वस्थ व्यक्ति की तुलना में घट जाता है। इसी तरह से सिजोफ्रेनिया जैसी गंभीर मानसिक बीमारी की हालत में न्यूरोट्रांसमीटर—डोपामीन, ग्लूटामेट और नॉरएपिनेफ्रिन में गड़बड़ी आ जाती है।

मस्तिष्क में होने वाले इन रासायनिक परिवर्तनों को दवा के माध्यम से ठीक किया जा सकता है, जिससे मानसिक बीमारी के लक्षणों में लाभ होता है और व्यक्ति पहले की तुलना में स्वस्थ व सामान्य हो सकता है, लेकिन यदि समय पर इनका उपचार न किया जाए तो ये परेशानियाँ विकराल रूप ले सकती हैं।

मानसिक बीमारियों के जो कारण होते हैं, जिन वजहों से लोग मानसिक रूप से बीमार होते हैं, उन्हें प्रायः छिपाया जाता है, उन पर खुले मन से बात नहीं की जाती है, जिसके कारण व्यक्ति के मन में मनोग्रंथियाँ पनप जाती हैं और वो मानसिक बीमारी का रूप लेने लगती हैं और कभी-कभी शारीरिक बीमारी के रूप में भी उभरती हैं। यदि परिवार के लोग आपस में एकदूसरे की समस्याओं को सुलझाने में मदद करें, एकदूसरे की भावनात्मक पीड़ा को समझने व दूर करने का प्रयास करें, एकदूसरे को अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता दें व परिवार में पनपने वाले घुटन भरे माहौल को दूर करें तो ऐसे परिवार में मानसिक बीमारियाँ पनपेंगी ही नहीं।

आधे से अधिक मानसिक बीमारियाँ तो खुले मन से अपनी बात कहने से दूर हो जाती हैं; क्योंकि जब व्यक्ति खुलकर अपनी बात कहता है, तो उसे समस्याओं का कारण समझ में आता है और उसे स्वयं ही समस्याओं का समाधान मिल जाता है और खुलकर बात करने से मनोग्रंथियाँ भी खुलती हैं। सुनने वाला व्यक्ति भी जब उसे सुनने में पूरा सहयोग करता है, तो उसके मन में विश्वास पनपता है, उसे अपनापन महसूस होता है और उसका मन शांत होता है। इस तरह अविश्वास, शंका, संदेह, अनावश्यक तनाव, अतिचिंता, नकारात्मक सोच व संकीर्ण नजरिया जहाँ मानसिक बीमारियों के मूल कारण होते हैं तो वहीं विश्वास, प्रेम, भावनात्मक सहयोग, आत्मीयता, अपनापन, सकारात्मक सोच व व्यापक दृष्टिकोण मानसिक स्वास्थ्य में सहयोग करते हैं। ❑

मुगलों के शासनकाल में एक स्वाभिमानी व दृढ़ चरित्र संत हुए हैं, जिनका नाम मतिदास था। वे हिंदुओं को संगठित कर आततायियों के शासन से मुक्त करना चाहते थे। उनके उद्देश्यों की भनक जैसे ही औरंगजेब को मिली तो उसने संदेश भिजवाया— यदि जीवन चाहते हो तो स्वधर्म त्यागकर हमारा धर्म स्वीकार कर लो। ऐसा करोगे तो एक सम्मानित जीवन जिओगे अन्यथा मृत्युदंड पाने के लिए तैयार हो जाओ। मतिदास ने मृत्यु का चयन किया। मृत्यु के समय भी वे मुस्करा रहे थे।

जब आए घर पर यम के दूत

बात नवंबर, 1957 की है। वाराणसी जनपद के सकलडीहा स्टेशन से तीन कोस उत्तर की ओर एक गाँव है—प्रभुपुर। उसी गाँव में भांगरी नामक एक मुसलमान स्त्री की पड़ोसी महिला संघातिक रोग से पीड़ित थी। भांगरी उसकी बीमारी का समाचार सुनकर उस स्त्री को देखने गई। उसे देखने के पश्चात ज्यों ही वह लौटकर अपने घर आई तो अचानक ही उसकी मृत्यु हो गई। अपने घर से उस बीमार स्त्री के पास जाने से पहले वह बिलकुल ही स्वस्थ थी। उसे किसी प्रकार का कोई रोग नहीं था।

भांगरी मुसलमान थी। उसे मुसलमानी प्रथा के अनुसार दफनाने की क्रिया प्रारंभ कर दी गई। उसे दफनाने के लिए गाँव से बाहर जंगल के कब्रिस्तान में एक गड्ढा भी खोद लिया गया और भांगरी के शव को वस्त्रों से लपेटकर सी दिया गया, किंतु जब उसे कब्र में दफनाने के लिए रखा जाने लगा तो वह एकाएक जीवित हो गई। उसके मुख से कुछ अव्यक्त से शब्द निकले। उसने अपने हाथ के संकेत से अपने मुख पर से कपड़ा हटाने के लिए कहा।

जब उसके मुख पर से कपड़ा हटाया गया तो उस समय लोगों ने बड़े ही आश्चर्य के साथ देखा कि उसका सिर जो पहले ठीक-ठाक था, अब उसमें जलने के तीन निशान बने हैं, मानो किसी ने उसे त्रिशूल गरमकर दाग दिया हो। उसके कुछ केश भी जल गए थे। बाद में जब तक भांगरी जीवित रही, तब तक वे केश बराबर जले ही रहे। वह त्रिशूल का निशान भी उसके मरने तक बराबर इसी प्रकार बना रहा। लोगों ने इसका कारण पूछा तो उन्हें भांगरी ने बताया—

"मैं बिलकुल ठीक-ठाक थी। मुझे कोई रोग नहीं था, परंतु यकायक मेरा शरीर छूट गया। शरीर छूटने पर मैंने देखा कि दो आत्माएँ मेरे पास आईं, जो मुझे पकड़कर अपने साथ कहीं दूर ले गईं। वे मुझे जहाँ ले गईं, वहाँ मैंने देखा कि एक बहुत बड़ी सभा हो रही थी। उस सभा के मध्य में एक ऊँचे आसन पर एक बड़ा ही तेजस्वी व्यक्ति बैठा हुआ था।"

इतना कहकर भांगरी आगे बोली—"उस तेजस्वी व्यक्ति ने उन दोनों आत्माओं को, जिन्होंने मुझे उसके सामने ले जाकर उपस्थित किया था, बहुत ही फटकारा और कहा कि तुम इसे यहाँ क्यों ले आईं हो? इसकी मृत्यु अभी नहीं लिखी थी। इसकी तो आयु अभी चौदह वर्ष और बाकी है। तुम्हें तो हमने इसके पड़ोस की जो स्त्री बीमार है, उसे लाने के लिए भेजा था। इसके भाग्य में यह लिखा है कि यह अपनी आँखों से अपनी दोनों पुत्रियों की मृत्यु देखने के बाद ही शरीर छोड़ेगी। अब तुम इसे वापस इसके शरीर में छोड़कर आओ। इसके हित की दृष्टि से त्रिशूल से इसके सिर को दाग दो, ताकि इसे शरीर रहते तक यहाँ आने की बात याद रहे। यह पापों से बचे। उन आत्माओं ने उस तेजस्वी पुरुष की बात सुनकर मेरे माथे पर त्रिशूल से प्रहार कर दिया। इसी कारण ये मेरे सिर के केश जल गए हैं और मेरे सिर पर उनका लगाया त्रिशूल का निशान अभी तक बना हुआ है।"

भांगरी की बताई हुई चारों ही बातें सत्य सिद्ध हुईं। उसके सिर पर यमदूतों द्वारा लगाया गया निशान जीवन भर बना रहा। जिस समय भांगरी को पुनर्जीवन मिला, उसी समय उसकी पड़ोस की बीमार स्त्री का देहावसान हो गया। 14 वर्ष के भीतर ही भांगरी के सामने उसकी दोनों लड़कियों का देहावसान हो गया। उनके मरने का दु:ख उसे आँखों से देखने को मिला। 14 वर्ष पूरे करने के बाद 15वें वर्ष में उसकी मृत्यु हो गई।

अब इसी तरह की एक और घटना तुलसीबाई से जुड़ी है। यह बात मार्च, 1966 की है। तुलसीबाई कानपुर से चालीस मील दूर एक गाँव में रहा करती थीं। अपने धर्मार्थ कार्यों तथा पूजा-पाठ से युक्त जीवन के लिए वे जानी जाती थीं। 14 फरवरी, 1966 को रात्रि 10 बजे उनका देहांत हो गया और दूसरे दिन प्रात: जब उन्हें चिता पर रखा गया तो वे उठकर बैठ गईं और बताने लगीं कि यमदूत उन्हें जब भगवान के सामने ले गए तो उन्होंने उन्हें डाँटते हुए कहा कि अभी

इसका समय नहीं हुआ है। इसे अभी यहाँ क्यों ले आए हो?

इस पर यमदूत उन्हें वापस लाकर छोड़ गए। उन्होंने यह भी बताया कि भगवान के सिंहासन पर इतनी चमक थी कि मुझे उनकी झलक तक नहीं दिख पाई। तुलसीबाई को, जो उस क्षेत्र में बुआ जी के नाम से विख्यात थीं, गाजे-बाजे के साथ घर लाया गया। समाचारपत्रों में जब यह खबर छपी तो उनके दर्शनों के लिए हजारों की भीड़ उस गाँव में पहुँचने लगी। अगले माह की शिवरात्रि के दिन सहसा उन्होंने कहा कि अब मेरा अंतकाल आ गया है और यह कहते ही उनके प्राण-पखेरू उड़ गए।

ये घटनाएँ आश्चर्यजनक व विस्मयकारी अवश्य हैं, पर शत-प्रतिशत सत्य हैं। हमारे कर्मों के अनुसार इस संसार में सुख-दु:ख की प्राप्ति होती है और इस जीवन के बाद भी हमारी गति या सद्गति हमारे कर्मों के आधार पर ही निर्धारित होती है। इस सत्य के विवरण से हमारे धर्मशास्त्र भरे पड़े हैं। इसलिए हम हमेशा नेक कर्म, श्रेष्ठ कर्म, निष्काम कर्म करते रहें, यही श्रेष्ठ है। ❑

तक्षशिला के राजा आंभीक के आमंत्रण पर सिकंदर कुछ दिनों के लिए तक्षशिला में ठहर गया। एक दिन सायंकाल वह एक गाँव की तरफ निकल गया। वहाँ एक पंचायत हो रही थी। सिकंदर पंचों का न्याय देखने ठहर गया। पंचायत की कार्रवाई प्रारंभ हुई। वादी बोला—"मैंने प्रतिवादी से एक खेत खरीदा। हल जोतते समय जमीन के नीचे मुझे एक सोने के सिक्कों से भरा घड़ा मिला। मैंने केवल जमीन खरीदी थी, उसके नीचे की संपत्ति नहीं। इन मुद्राओं पर प्रतिवादी का ही अधिकार है, मेरा नहीं; किंतु वह मुहरें लेने से इनकार कर रहा है। कृपा कर न्याय किया जाए और प्रतिवादी से स्वर्णमुद्राएँ लेने को कहा जाए।"

आज्ञा पाकर प्रतिवादी बोला—"मैंने जमीन बेच दी। उसमें उगने वाली फसल की तरह उसकी अंतरस्थ संपत्ति से भी मेरा कोई सरोकार नहीं। उन मुहरों पर मेरा कोई अधिकार नहीं है। वादी से कहा जाए कि वह सारा स्वर्ण अपने पास रखे।" कोई भी पक्ष उन स्वर्णमुद्राओं को लेने को तैयार न था। पंच बड़े असमंजस में पड़े। बड़ी देर विचार-विमर्श के बाद सरपंच ने फैसला दिया। सरपंच बोला—"वादी के विवाहयोग्य लड़की और प्रतिवादी के विवाहयोग्य लड़का है। वादी अपनी लड़की का विवाह प्रतिवादी के लड़के के साथ कर दे और वह सारा स्वर्ण वर-कन्या को उनके जीवन-विकास के लिए प्रदान कर दे।" वादी-प्रतिवादी ने पंचायत का फैसला मान लिया और लड़की-लड़के का विवाह कर सारा स्वर्ण उनको दे दिया।

सिकंदर चुपचाप यह सारी कार्रवाई देखता रहा। भारतीयों का त्यागपूर्ण जीवन देखकर उसकी आत्मा कह उठी—एक यह गरीब ग्रामीण जन हैं, जो पाए हुए स्वर्ण को अपने पास नहीं रखना चाहते और एक तू है, जो राजा होकर भी दूसरों की धन-दौलत छीनने के लिए रक्तपात करता फिर रहा है। धिक्कार है तेरे लोभ और तेरी तृष्णा को।

एक कल्याणकारी प्रतीक—स्वस्तिक

भारतीय संस्कृति में प्रतीकों का बड़ा महत्त्व है। ये प्रतीक अपने भीतर अनेक रहस्यों को समेटे हुए होते हैं। इनका रहस्य वही अनावृत कर सकता है, जो संस्कृति के इन प्रतीकों को गहराई से जानता एवं समझता हो। शेष के लिए तो प्रतीक केवल प्रतीक बनकर रह जाते हैं। उनका कोई अर्थ उनके लिए नहीं निकलता है। परंतु यदि प्रतीकों को जान–समझ पाने में सफलता मिलती है तो इनसे अनगिनत लाभ उठाए जा सकते हैं। प्रतीकों की इस शृंखला में स्वस्तिक भी भारतीय संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण प्रतीक है, जिसे सूर्य का प्रतीक माना जाता है। अपनी संस्कृति में स्वस्तिक के अनगिनत आयाम हैं और इसे तरह–तरह से अभिव्यक्त किया गया है।

स्वस्तिक का सामान्य अर्थ आशीर्वाद देने वाला, मंगल या पुण्यकार्य करने वाला है। यह शुभ या मांगलिक कार्यों एवं पुण्यकृतियों की स्थापना के रूप में प्रकट किया जाता है। स्वस्तिक शब्द मूलभूत 'सु + अस' धातु से बना है। 'सु' का अर्थ कल्याणकारी एवं मंगलमय है। 'अस' का तात्पर्य है—अस्तित्व एवं सत्ता। इस प्रकार स्वस्तिक का मतलब है ऐसा अस्तित्व, जो शुभ भावना से सराबोर हो, कल्याणकारी हो, मंगलमय हो—जहाँ अशुभता, अमंगल एवं अनिष्ट का लेश मात्र भय न हो। स्वस्तिक का अर्थ है—ऐसी सत्ता, जहाँ केवल कल्याण एवं मगल की भावना ही निहित हो, जहाँ औरों के लिए शुभ भावना सन्निहित हो। इसलिए स्वस्तिक को कल्याण की सत्ता और उसके प्रतीक के रूप में निरूपित किया जाता है।

अमरकोश में स्वस्तिक का अर्थ आशीर्वाद, मंगल या पुण्यकार्य करना बताया गया है अर्थात सभी दिशाओं में सबका कल्याण हो—ऐसी भावना स्वस्तिक के प्रतीक में सन्निहित है। देवताओं के चारों ओर घूमने वाले आभामंडल का चिह्न स्वस्तिक होता है, इसलिए इसे देवताओं की शक्ति एवं सामर्थ्य का प्रतीक माना गया है। स्वस्तिक को शास्त्रों में शुभ एवं कल्याणकारी बताया गया है। प्राचीनकाल में हमारे यहाँ कोई भी श्रेष्ठ कार्य करने से पूर्व मंगलाचरण लिखने की परंपरा थी। यह मंगलाचरण सभी के लिए लिखना संभव नहीं था, परंतु सभी इस मंगलाचरण का महत्त्व जानते थे एवं उसका लाभ भी लेना चाहते थे। इसलिए ऋषियों ने स्वस्तिक चिह्न की परिकल्पना की, जिससे कि सभी के कार्य मंगलप्रद ढंग से संपन्न हो सकें।

स्वस्तिक भगवान सूर्य का प्रतीक है। सूर्य को समस्त देवशक्तियों का केंद्र माना गया है। सूर्य प्राणों का आधार भी है। सूर्य के कारण ही जीवन में प्राण का संचालन, नियमन एवं नियंत्रण होता है। अतः स्वस्तिक को सूर्य का प्रतीक मानकर जीवन और जीवनचेतना की विशेषताओं के प्रति श्रद्धा की सहज अभिव्यक्ति की गई है। ऋग्वेद की एक ऋचा में स्वस्तिक की चार भुजाओं को चार दिशाओं की उपमा दी गई है। चारों दिशाएँ शुभ एवं मंगलमय हों तथा सदा हमारा कल्याण करती रहें—इसी भावना के साथ स्वस्तिक निरूपित किया गया है। पुराणों में स्वस्तिक को भगवान विष्णु का सुदर्शन चक्र भी बताया गया है। इसमें शक्ति, प्रगति, प्रेरणा और सौंदर्य का दिव्य समन्वय है। भगवान विष्णु की चार भुजाओं की संगति भी कहीं–कहीं सुदर्शन चक्र के साथ दरसाई गई है।

विघ्नहर्त्ता गणेश जी की प्रतिमा की भी स्वस्तिक चिह्न से संगति है। गणेश जी के सूँड़, हाथ, पैर, सिर आदि अंग इस तरह से चित्रित होते हैं कि यह स्वस्तिक की चार भुजाओं के रूप में प्रतीत होते हैं। 'ॐ' को भी स्वस्तिक का प्रतीक माना जाता है। 'ॐ' ही सृष्टि के सृजन का मूल है। इसमें शक्ति, सामर्थ्य एवं प्राण सन्निहित हैं। ईश्वर के नामों में सर्वोपरि मान्यता इसी अक्षर की है। अतः स्वस्तिक ऐसा प्रतीक है, जो सर्वोपरि भी है और शुभ एवं मंगल भी है।

भारतीय संस्कृति के अलावा बौद्ध, जैन, सिख धर्मों में भी स्वस्तिक को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। बौद्ध धर्म में स्वस्तिक को एक सनातन एवं शाश्वत प्रतीक के रूप में माना गया है। प्राचीन तिब्बत में इसे उसी तरह से दरसाया गया है। जैन धर्म में स्वस्तिक का

बड़ा महत्त्व है। जैन मंदिरों एवं धार्मिक ग्रंथों में इसे पवित्र बताया जाता है। धार्मिक कार्यों में वेदी पर चावल से स्वस्तिक को उकेरना मंगलमय माना जाता है। स्वस्तिक जीवन चक्र का प्रतीक भी माना गया है।

जापान, कोरिया, चीन आदि देशों में स्वस्तिक को शुभ प्रतीक के रूप में प्रयोग किया जाता है। इन देशों में उसे समस्त सृष्टि का प्रतीक माना गया है। प्राचीन ग्रीस में भी स्वस्तिक को कलाकृतियों, कपड़ों और मुद्राओं में अंकित किया गया है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में ग्रीस में चाँदी के सिक्कों पर स्वस्तिक चिह्न मिले हैं। लैटिन अमेरिका, ब्राजील में भी स्वस्तिक की उपस्थिति के प्रमाण मिलते हैं। बाल्टिक देशों—लाटविया, लिथुएनिया एवं एस्टोनिया का तो राष्ट्रीय प्रतीक चिह्न ही स्वस्तिक है। वहाँ के सभी धार्मिक स्थलों के ऊपर स्वस्तिक का प्रतीक ध्वजों के ऊपर लहराता हुआ मिलता है। चूँकि ये देश पूर्ण रूप से भारतीय संस्कृति से जन्मे हैं, अत: उनके यहाँ स्वस्तिक प्रतीक का अर्थ भी वही है, जो भारतीय संस्कृति में है। वहाँ इसे शुभकर्मों का सूचक एवं सृष्टि का आधार माना जाता है।

ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक साक्ष्यों के आधार पर देखें तो स्वस्तिक संपूर्ण विश्व में कहीं-न-कहीं अपनी उपस्थिति अवश्य दर्ज कराता है। ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड के माओरी आदिवासी स्वस्तिक को मंगल प्रतीक की तरह प्रयोग करते हैं। साइप्रस की खुदाई में प्राप्त मूर्तियों में स्वस्तिक चिह्न मिलते हैं। ऐसे ही प्रमाण मिस्र, यूनान आदि की खुदाई में भी उपलब्ध हुए हैं।

स्वस्तिक की आकृति के संदर्भ में मत है कि इसकी आकृति दो प्रकार की हो सकती है। पहली आकृति—जिसमें रेखाएँ आगे की ओर संकेत करती हुई दाहिनी ओर को मुड़ती हैं। इसे दक्षिणोन्मुखी स्वस्तिक कहते हैं। दूसरी आकृति में रेखाएँ पीछे की ओर संकेत करती हुई बाईं ओर मुड़ती हैं। उसे वामावर्त स्वस्तिक कहते हैं। यह घड़ी की सुई के चलने की दिशा के विपरीत है। दक्षिणावर्ती स्वस्तिक जो कि घड़ी की सुई की दिशा में मुड़ता है को शुभ, मंगल एवं सौभाग्यवर्द्धक माना गया है। वामावर्त स्वस्तिक, अमंगल एवं अशुभ का सूचक माना जाता है। इसलिए मंगल एवं शुभकर्मों में दक्षिणावर्ती स्वस्तिक का अंकन किया जाता है।

आचार्य अभिनवगुप्त ने स्वस्तिक की रेखाओं को नादब्रह्म अथवा अक्षरब्रह्म का परिचायक माना है। इसमें श्रुति, अनुभूति एवं युक्ति का दिव्य संगम मिलता है। स्वस्तिक का गंभीर आध्यात्मिक महत्त्व है। स्वस्तिक जहाँ भी उकेरा जाता है, वहाँ की नकारात्मक ऊर्जा को नष्ट करता है। ब्रह्मांड में सकारात्मक ऊर्जा की धारा को अपनी ओर आकर्षित करने की इसमें अद्भुत क्षमता है। इसी को आधार मानकर स्वस्तिक को अलग-अलग वस्तुओं से बनाया जाता है, जिनके अलग-अलग अर्थ हैं। उदाहरण के तौर पर सिंदूर या अष्टगंध से स्वस्तिक का निर्माण शुभ एवं सात्त्विक माना जाता है। स्वस्तिक जहाँ भी होता है, वहाँ नकारात्मक ऊर्जा को नष्ट करता है और सकारात्मक ऊर्जा में वृद्धि करता है। इसलिए शुभ एवं मंगल कार्यों में इसका प्रयोग किया जाता है। यह जहाँ भी और जिस भी रूप में प्रयोग किया जाता है, वहाँ शुभ एवं पावन घटनाएँ घटती हैं। भारतीय संस्कृति के प्रतीकों के अर्थबोध एवं रहस्यबोध को समझा जा सके तो इनके द्वारा अद्भुत प्रयोग किए जा सकते हैं। इस तरह स्वस्तिक एक श्रेष्ठ एवं मंगलप्रद प्रतीक है, जो सदा कल्याणकारी होता है। ❑

कस्तूरबा उन दिनों अस्वस्थ थीं। उनके स्वास्थ्य को सुधारने के सभी प्रयत्न निष्फल सिद्ध हो रहे थे। एक बार गांधी जी ने उनको नमक छोड़ने की सलाह दी। इस पर बा बोलीं—"आप मेरे नमक छोड़ने के इतने पीछे पड़े हैं। पहले आप इसे छोड़कर दिखाइए।" गांधी जी बोले—"अच्छी बात है। आप इसे नहीं छोड़ना चाहतीं तो न छोड़ें, परंतु मैंने आज से नमक एक वर्ष के लिए छोड़ दिया है।" गांधी जी ने इस प्रतिज्ञा से कस्तूरबा को यह समझाने में सफलता प्राप्त की कि संयम के द्वारा किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त की जा सकती है।

साधो, सहज समाधि भली

ध्यान अंतस् की आकुल पुकार है। ध्यान यात्रा है चेतन से परम चेतन की। ध्यान अमन की अवस्था है अर्थात मन की मृत्यु है। ध्यान मृत्यु है—मन की चपलता व चंचलता की। ध्यान मृत्यु है—वर्तमान में हम जो कुछ भी हैं उसकी, वर्तमान में हम जहाँ भी हैं उसकी। ध्यान अखंड शांति, प्रशांति व विश्रांति की अवस्था है। इस अवस्था में चित्त को स्वयं का ही भान नहीं होता, फिर ऐसी दशा में विषयों की ओर कौन देखेगा? क्योंकि उस अवस्था में विषय भोगों से संबंध, संपर्क और उन्हें पाने की इच्छा रखने वाला मन ही नहीं रहा। चेतन से परम चेतन की इस यात्रा में अब चित्त नहीं रहता, मन ही नहीं रहता; क्योंकि ध्यान की अनंत गहराई में उतरकर समाधि की प्राप्ति हो चुकी होती है।

योगसूत्र के रचनाकार महर्षि पतंजलि कहते हैं—

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ *3/2* ॥
तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥ *3/3* ॥

अर्थात—जिस ध्येय वस्तु में चित्त को लगाया जाए, उसी में चित्त का एकाग्र हो जाना, उस ओर एक ही तरह की वृत्ति का प्रवाह चलना, उसके बीच में किसी भी दूसरी वृत्ति का न उठना ही ध्यान है और जब ध्यान में केवल ध्येयमात्र की ही प्रतीति होती है और चित्त का निजस्वरूप शून्य-सा हो जाता है, तब वह ध्यान ही समाधि में बदल जाता है। ध्यानावस्था में चित्त की स्थिति को प्रकाशित करते हुए योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण गीता—*6/19* में कह रहे हैं—

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥

अर्थात—जिस प्रकार वायुरहित स्थान में स्थित दीपक चलायमान नहीं होता, वैसी ही स्थिति परमात्मा के ध्यान में लगे हुए योगी के चित्त की होती है। युगऋषि पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी के अनुसार जैसे ईंधन और अग्नि मिलकर एक हो जाते हैं, वैसे ही ध्यान में जीव और ब्रह्म, दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण परमहंस देव कहा करते थे कि एक बार समुद्र की गहराई नापने नमक का एक पुतला समुद्र में उतरा और फिर वापस नहीं आया; क्योंकि नमक समुद्र में ही विलीन हो गया। वैसी ही स्थिति ध्यानावस्था में चित्त की भी होती है।

ध्यान में डूबते ही चित्त का विसर्जन होने लगता है और इसके विसर्जन के साथ अज्ञान का गहन अँधेरा भी भाग खड़ा होता है। विचारों की भीड़ भी समाप्त हो जाती है। मन की चपलता, चंचलता भी भाग खड़ी होती हैं। ऐसी अवस्था में लगता है कि जैसे पूरे बाह्यजगत में अब भी हलचल हो, शोर हो, सूर्य, चंद्र, तारे, पृथ्वी, नदियाँ, सिंधु सब में भारी हलचल हो, पर अपने अंतस् में अब घोर नीरवता है, शांति और प्रशांति है; क्योंकि चित्तसिंधु में रह-रहकर उठने वाली इच्छाओं, कामनाओं की लहरें अब थम चुकी हैं, शांत हो चुकी हैं, सदा-सदा के लिए, सर्वदा के लिए। आत्मा के अखंड, अजस्र, अमृत प्रकाश में डूबते ही चित्त का अवसान हो चुका है, अवदान हो चुका है।

ऐसी स्थिति में भान होता है कि अब आत्मा शनैः-शनैः अपने नैसर्गिक रूप, नैसर्गिक सौंदर्य को प्राप्त हो रही है। आत्मा को अब अपने चेतन व आनंद स्वरूप की अनुभूति हो रही है। ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मभाव आत्मा में स्वयं ही प्रकट हो रहे हैं। जैसे चित्त आत्मसिंधु में विलीन हो गया, वैसे ही अब स्वयं आत्मा भी ब्रह्मसिंधु में विलीन हुए जा रही है। आत्मप्रकाश का परम प्रकाश, परमात्मप्रकाश से मिलन हो रहा है, पर यह मिलन फिर से विलग हो जाने के लिए नहीं, बल्कि सदा-सदा के लिए एक हो जाने के लिए है।

यही निर्बीज समाधि है, कैवल्य है, मुक्ति है, मोक्ष है। इस अवस्था को प्राप्त योगी संसार में रहते हुए भी अब संसार में नहीं है; क्योंकि उसमें अब संसार ही नहीं रहा। वह देह में है, पर फिर भी विदेह है; क्योंकि अब देह में उसकी कोई आसक्ति ही नहीं रही। आचार्य शंकर विवेकचूड़ामणि में मोक्ष को कुछ इस प्रकार परिभाषित करते हैं—

►शक्ति संरक्षण वर्ष◄

देहस्य मोक्षो नो मोक्षो न दण्डस्य कमण्डलोः।
अविद्याहृदयग्रन्थिमोक्षो मोक्षो यतस्ततः॥

॥ 559 ॥

कुल्यायामथ नद्यां वा शिवक्षेत्रेऽपि चत्वरे।
पर्णं पतति चेत्तेन तरोः किं नु शुभाशुभम्॥

॥ 560 ॥

अर्थात—मोक्ष, हृदय की अविद्यारूपी ग्रंथि के नाश को ही कहते हैं। इसलिए देह अथवा दंड-कमंडलु के त्याग का नाम मोक्ष नहीं है। वृक्ष का सूखकर झड़ा हुआ पत्ता नाली में, नदी में, शिवालय में अथवा किसी चबूतरे पर कहीं भी गिरे, उससे वृक्ष का क्या हानि-लाभ हो सकता है? सचमुच समाधि को प्राप्त मुक्त पुरुषों, बुद्ध पुरुषों की स्थिति भी ऐसी ही होती है। ऐसे ब्रह्मज्ञानी पुरुष जीते हुए भी सदा मुक्त और कृतार्थ ही होते हैं। देह में होते हुए भी सदा अद्वितीय ब्रह्म में ही लीन रहते हैं।

ध्यान के नियमित अभ्यास से जब हम इस स्थिति को एक बार प्राप्त कर लेते हैं तब फिर ऐसा नहीं है कि आप इसे करते हैं तब यह ध्यान है या समाधि है। फिर ऐसा नहीं है कि आप सुखासन, पद्मासन, सिद्धासन आदि किसी निश्चित आसन में बैठते हैं, मेरुदंड सीधी रखते हैं और आप अपनी आँखें बंद रखते हैं, तभी यह ध्यान है। नहीं, ये सब तो केवल प्रयोग हैं, नए लोगों के लिए। ये प्रयोग उनके लिए हैं, जो ध्यान की पहली कक्षा में अभी-अभी आए हैं।

जब अंडे तोड़कर चूजे बाहर निकलते हैं, वे कुछ बड़े होते हैं, फिर उनके पंख उग आते हैं, वे अब फुदकते और फड़फड़ाते हैं, पर अभी उड़ नहीं पा रहे, तभी माँ उन्हें उड़ना सिखाती है। जब वे चिड़ियाँ एक बार उड़ना सीख जाती हैं तो फिर वे पूरे नीलगगन की सैर करके ही वापस आती हैं। फिर उन्हें उड़ना नहीं पड़ता; क्योंकि अब तो उनके पंखों में ही उड़ान जो भर गई है। अब उड़ना, उनका अभ्यास नहीं स्वभाव हो गया।

ध्यान भी वैसा ही है। प्रारंभ में यदि आप इसके प्रयोग करते हैं, तो अवश्य करें। ईश्वर के साकार, निराकार रूप, सूर्य, चंद्र, हृदयकमल, आकाश, ईष्ट आदि जहाँ भी, जिसमें भी चित्त लगे—अवश्य लगाएँ, पर यदि निरंतर अभ्यास करते-करते आपने ध्यान में डूबना सीख लिया तो फिर आप किसी ध्येय वस्तु के भरोसे रहते ही नहीं। आप सोते-जागते, चलते-खाते, सबमें सदा ध्यान में ही होते हैं।

आपने आँखें खोल रखी हैं, तब भी आप गहन ध्यान में हैं और आपकी आँखें बंद हैं, तब भी यह गहन ध्यान ही है। इसलिए तो श्रीरामकृष्ण देव हमेशा चलते-फिरते, गाते, नाचते समाधि में चले जाते थे। चैतन्य महाप्रभु कीर्तन करते-करते ध्यान-समाधि में डूब जाते थे। यह सचमुच सहज ध्यान, सहज समाधि है, जिसे किया नहीं जाता, वरन स्वयं ही होने लगता है। संत कबीर इसे कुछ इस प्रकार गाए जा रहे हैं—

साधो, सहज समाधि भली।
आँख न मूँदौं, कान न रूँधौं,
तनिक कष्ट नहीं धारौं
खुले नैन पहचानौं हँसि हँसि
सुंदर रूप निहारौं।
जहँ-जहँ डोलौं सो परिक्रमा,
जो कुछ करौं सो सेवा।
जब सोवौं तब करौं दंडवत,
पूजौं और न देवा॥
कहौं सो नाम, सुनौं सो सुमिरन,
खावँ पियौं जो पूजा।
सबद निरंतर से मन लागा
मलिन वासना त्यागी।
उठत बैठत कबहुँ न,
ऐसी तारी लागी।

❑

आज का कर्म कल का भाग्य बन जाता है। आज का दूध कल दही बन जाता है। उसका नाम, रूप बदल जाता है, पर ऐसा नहीं होता है कि बिना दूध के दही जमने लगे। भले-बुरे कर्म ही हमारे लिए सुखद और दुखद प्रतिफल लेकर उपस्थित होते हैं। हमें कर्मफल की सुनिश्चितता स्वीकार लेनी चाहिए।

—परमपूज्य गुरुदेव

कहीं आप हँसना भूल तो नहीं गए?

खुल करके हँसना जीवन की अनुपम सौगात है, लेकिन यह सौगात अधिकांश परिवारों में धूमिल होती दिखाई पड़ती है। जब तक बचपन रहता है, हँसी-खुशी चेहरे पर स्वाभाविक रूप से बनी रहती हैं, लेकिन जैसे ही किशोरावस्था, युवावस्था आती है, जिम्मेदारियाँ बढ़ती हैं, हँसी की यह स्वाभाविकता जीवन से विदा होने लगती है। ज्यादा परेशानियाँ व मुसीबतें आती हैं तो चेहरे पर हँसी का कोई नामोनिशान नहीं रहता, फिर याद आता है कि कभी हम हँसा करते थे, अब पता ही नहीं कि हम कैसे हँसें? जैसे हम हँसना ही भूल गए हों।

बच्चों के चेहरे पर चार चाँद लगाने वाली यह हँसी बड़े होने पर कहाँ गायब हो जाती है? क्यों यह स्वाभाविक रूप से हमेशा साथ नहीं रहती? क्योंकि किसी भी तत्त्व को जीवन में रहने के लिए कोई-न-कोई रिक्त स्थान चाहिए और हँसी के साथ भी कुछ ऐसा ही है। यदि कली को पत्थर से दबा दिया जाए तो खिलकर उसके फूल बनने की संभावनाओं पर विचार करना निरर्थक है। यहाँ तक कि कोमल-से-कोमल वस्तु को भी यदि किसी वजनी लोहे से दबा दिया जाए तो वह कठोर बन जाती है जैसे रजाई में भरे जाने से पहले वाली रूई और रजाई में उपयोग होने के बाद उसके अंदर से निकाली गई उसी रूई में बहुत अंतर हो जाता है। कोमलता का वैज्ञानिक सिद्धांत ही है कि उसके दो अणुओं के बीच में थोड़ा स्पेस है, जिसके कारण उन अणुओं में हिलने-डुलने की गुंजाइश बनी रहती है। हँसी के साथ भी कुछ ऐसा ही है।

हँसी का संबंध कोमलता से, सरलता से, सहजता से, सहृदयता से, संवेदनशीलता से है। जब तक हमारे जीवन में यह सब है, हँसी की स्वाभाविकता बनी रहती है और जैसे ही हमारे जीवन में असहजता, तनाव व चिंता प्रवेश करते हैं, तो जीवन की स्वाभाविकता समाप्त हो जाती है। इसके कारण जीवन पहले से अधिक असंवेदनशील हो जाता है और उसकी कोमलता—कठोरता में बदल जाती है।

यदि हँसी मात्र एक शारीरिक क्रिया होती, यानी ओंठों के कुछ इंचों का फैलाव तथा गले से निकली हुई कुछ ध्वनियाँ, तो कोई बात नहीं थी, लेकिन ऐसा नहीं है। हँसी के साथ वे भावनाएँ मन में घुली होती हैं, जो व्यक्ति को गुदगुदाती हैं, हँसाने वाली यादों में भी उन भावनाओं का स्पर्श होता है, जो व्यक्ति को हँसने के लिए मजबूर कर देती हैं। हास्य कविताओं में, कल्पनाओं में, कार्टून शो में बहुत कुछ ऐसी भाव-भंगिमाएँ होती हैं, जो हँसने के लिए व्यक्ति को प्रेरित करती हैं।

हँसी व्यक्ति के अंदर का उल्लास है, मन की उन्मुक्तता है, दिमाग की उड़ान है, हृदय की गूँज है और शरीर के रोम-रोम के द्वारा व्यक्त की गई प्रशंसा है। यह एक प्रकार से हमारे अंतर्मन द्वारा की गई प्रकृति की आराधना है, उसके प्रति प्रकट किया गया गीतात्मक आभार है।

हम सुखी तब होते हैं, जब हम निर्भार एवं निश्चिंत जीवन जीते हैं। सृष्टि के आरंभ से लेकर आज तक मानव जाति के समस्त कर्मों के केंद्र में मुख्यतः यही भावना रही है कि कैसे मनुष्य के जीवन को अधिक-से-अधिक सुखमय बनाया जाए। इसके लिए उसने जो दृष्टिकोण स्थापित किया, वह यह था कि उसे अधिक-से-अधिक समय उपलब्ध कराया जाए, परंतु इस कोशिश ने मनुष्य और समय को एकदूसरे का प्रतिद्वंद्वी बना दिया है और मनुष्य समय का उपयोग निश्चिंतता के लिए कम और अधिक-से-अधिक चिंताएँ बटोरने के लिए ज्यादा करता है।

आज तक जितने भी आविष्कार हुए हैं, उन सबका यही उद्देश्य रहा है कि मनुष्य कम-से-कम समय में अपना कार्य कर ले, जो वह करना चाह रहा है, ताकि उसके पास अपने लिए समय बच सके। यह बचा हुआ समय ही वह अपने आनंद के लिए चाहता है, लेकिन हुआ यह है कि व्यक्ति अपने बचे हुए समय का इस्तेमाल अपने जीवन के लिए न करके 'और-और काम' करने के लिए करने लगा है।

इसका परिणाम यह हुआ कि इन्हीं 'और-और काम' करने के कारण उसकी चेतना में विचार, कल्पनाएँ, अनुभूतियाँ और स्मृतियों का जमघट लगता चला गया। हम अपने कामों में ही इतने उलझे रहते हैं कि हमारे पास अपने ही अन्य दूसरे कामों के लिए समय नहीं रह जाता और इसलिए हँसी को भी हमारे जीवन में उचित स्थान नहीं मिल पाता।

जीवन की संपूर्णता, खूबसूरती, गुणवत्ता इस बात पर निर्भर करती है कि हम इसके विभिन्न अवयवों के बीच किस प्रकार से और कितना संतुलन स्थापित कर पाते हैं और यही है—जीवन जीने की कला। अपना लक्ष्य हासिल करने के लिए, अपनी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए हम जीवन के अन्य अवयवों की ओर से अपना ध्यान हटा लेते हैं, लेकिन इन प्रयासों में अपनी वह हँसी कहीं पीछे छोड़ देते हैं, जिसके बिना हम अधूरे हैं। यही कारण है कि व्यक्ति सफल होकर बहुत कुछ पा लेता है, लेकिन वह अपनी स्वाभाविक हँसी से कोसों दूर हो जाता है।

हँसना जीवन की स्वाभाविकता है, लेकिन यह स्वाभाविकता तभी बनी रहेगी, जब व्यक्ति अपने यांत्रिक व कृत्रिम जीवन से बाहर आए। जीवन को एक ही ढर्रे पर चलाने, काम का बेतहाशा बोझ ढोने व जीवन को कृत्रिमता की ओर ले जाने से जीवन अपनी सहजता खो बैठता है। जीवन केवल वही नहीं है, जो दिखता है, जीवन में बहुत कुछ ऐसा है, जो अदृश्य है, लेकिन हमारे जीवन का अहम हिस्सा है। हमारा अंतर्मन, हमारी चेतना जो हर समय हमारे साथ हैं, लेकिन हम उन्हें भूल जाते हैं। जो व्यक्ति अपने जीवन के हर आयाम को समझने का प्रयास करता है, उसके विकास के प्रति सजग रहता है, वह जीवन की स्वाभाविकता के समीप रहता है और हँसी भी उसके जीवन में हमेशा खिली रहती है।

व्यक्ति जब तक किसी तरह के दबाव में जीवन जीता है, तब तक वह स्वाभाविक हँसी को हासिल नहीं कर सकता। जो उन्मुक्त होकर जीवन जीता है, हँसी उसके ही जीवन में सुशोभित होती है। आज भले ही कई तरह के कार्य, उत्तरदायित्व, कर्त्तव्य व्यक्ति के ऊपर अपना दबाव बनाते हैं, लेकिन यदि जीवन का असली आनंद लेना है, तो हमें इन सब के बावजूद जीवन में वह रिक्त स्थान बनाना होगा, जिसमें हँसी फिर से खिलखिला सके एवं हम सच में सुखी हो सकें। ❑

कलकत्ता में जन्मे कन्हाई लाल दत्त क्रांतिकारी थे। वे अपने साथियों के साथ बम बनाते पकड़े गए। इन्हीं के दल का एक व्यक्ति नरेंद्र गोसाईं मृत्यु के भय से व प्रलोभन में आकर सरकारी गवाह बन गया। कन्हाई लाल को यह देशद्रोह असह्य लगा। उन्होंने जेल में ही किसी प्रकार रिवाल्वर मँगा ली। नरेंद्र को एक सरकारी अस्पताल में रखा गया था। कन्हाई लाल दत्त पेटदरद का बहाना बनाकर अस्पताल पहुँचे और नरेंद्र से मिलने की इच्छा प्रकट की। कारण पूछने पर बोले कि वे भी सरकारी गवाह बनना चाहते हैं। नरेंद्र व जेलर जैसे ही उनसे मिलने आए, उन्होंने उन पर गोलियों की बौछार कर दोनों को मार दिया। इस घटना ने अँगरेज हुकूमत को झकझोर कर रख दिया। उन्हें फाँसी की सजा सुनाई गई, तब भी वे हँसते-हँसते संसार से विदा हो गए। उनकी मुस्कान यह संदेश देकर गई—अन्याय चाहे जितना भी बड़ा हो, उसका प्रतिकार करने का साहस न करना अपने मानवीय कर्त्तव्यों की उपेक्षा करना है। अन्याय का अंधकार चाहे जितना भी सघन हो, एक आदर्शवादी व्यक्ति उसको मिटाने के लिए अपने कर्मों का प्रकाश करके ही रहता है।

देवत्व की अभिव्यक्ति है परोपकार

परोपकार एक महान दैवीय व आध्यात्मिक गुण है। यह कुछ और नहीं, वरन देवत्व की अभिव्यक्ति है। साथ ही यह करुणा, प्रेम, पवित्रता व संवेदना की परम अभिव्यक्ति भी है। दूसरों की पीड़ा देखकर किसी पाषाण हृदय में भले ही कोई हलचल न हो पर करुणा, प्रेम व संवेदना से भरे हृदय में कोई हलचल न हो, ऐसा कदापि संभव नहीं। परोपकार—पावन हृदय की एक अलौकिक पुकार है, एक आकुल पुकार है। सच कहें तो ऐसी आकुल पुकार ईशकृपा से ही किसी के हृदय में उठती है। परसेवा, परोपकार हेतु हृदय की आकुल पुकार सचमुच एक दिव्य अनुदान है, वरदान है, अनुग्रह है जो प्रभुकृपा से ही हम पर बरसती है।

अपने संकल्प मात्र से कोटि-कोटि ब्रह्मांडों की रचना व संहार करने वाले प्रभु सर्वसमर्थ हैं, शक्तिशाली हैं, सर्वज्ञ हैं और सर्वव्यापी भी। संसार में उनके लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं, पर उन करुणानिधान की जरा करुणा तो देखिए कि वे स्वयं किसी पर अपनी करुणा बरसाना चाह रहे हैं, किसी की पीड़ा हरण करना चाह रहे हैं, पर वे इस पुनीत कार्य को हमारे इन नन्हे हाथों से ही कराना चाह रहे हैं। हमारे हाथों से ही किसी का भला कराना चाह रहे हैं। परमात्मा किसी पर अपना अनुग्रह बरसाना चाह रहे हैं, पर इस हेतु हमें अपना माध्यम बना वे यह श्रेय हमें देना चाहते हैं।

जब भी हमें किसी की सेवा, सहयोग का अवसर मिले तो इसे प्रभु इच्छा, प्रभुकृपा समझ हमें अपने हाथ से नहीं जाने देना चाहिए। कौन जाने फिर यह अवसर अपने हाथ लगे-न-लगे। कौन जाने किस वेश में स्वयं प्रभु हमारी सेवा पाने, हमारे घर आन बैठें। यदि हम सचमुच परोपकार के माध्यम से प्रभु की सेवा करना चाहते हैं तो पहले अपने हृदय की कोठरी तो साफ करना जरूरी है। प्रस्तुत प्रज्ञागीत में स्नेहसलिला माताजी (भगवती देवी शर्मा जी) हमें यही पावन सीख देती हैं—

कोठरी मन की सदा रख साफ बन्दे।
कौन जाने कब स्वयं प्रभु आन बैठे॥
तुम बुलाते हो उसे यदि भावना से।
कौन जाने कब निमंत्रण मान बैठे॥
दर्द यदि उभरे कभी मन में तुम्हारे।
खर्च मत करना बिना सोचे-विचारे॥
दर्द से रिश्ता सदा प्रभु का रहा है।
एक भी आँसू न कर बर्बाद बंदे।
कौन जाने कब समंदर माँग बैठे॥
माँगने की रीति-सी कुछ चल पड़ी है।
कृपणता से प्रीति-सी कुछ हो चली है॥
क्यों नहीं परमार्थ पथ का मान रखते।
क्यों नहीं इनसानियत की शान रखते॥
है तुम्हें दाता विधाता ने बनाया।
क्यों अरे खुद को भिखारी मान बैठे॥
कोठरी मन की सदा रख साफ बन्दे।

स्वार्थ में लेन-देन तो सभी करते हैं, बदले में कुछ पाने की इच्छा से सेवा-सहयोग करने वालों की कहाँ कमी है? पर परोपकार एक परम पवित्र भावना है। इसमें पाने, पाने की नहीं, सिर्फ देने, देने की चाहत है। परोपकार तो हृदय के प्रेमसिंधु, करुणासिंधु में उठ रही वे लहरें हैं, जो नररूपी नारायण व जीवरूपी शिव का अभिषेक करना चाहती हैं। ऐसे सहृदय लोग तो सृष्टि के कण-कण में, हर जीव में अपने शिव को देखते हैं, आराध्य को देखते हैं। अब तो संपूर्ण सृष्टि ही उनके लिए शिवालय है, देवालय है, और हर जीव शिव की प्रतिमाएँ हैं। अब तो वे इसी देवालय में, शिवालय में बैठकर परसेवा, परोपकार कर अपने आराध्य की अभ्यर्थना, आराधना करना चाहते हैं। अब उनके द्वारा की गई औरों की हरेक सेवा ही ईश-पूजा है, ईश-उपासना है, पर ऐसी उपासना करने वाले विरले ही होते हैं, इसलिए संत कबीर कह रहे हैं—

जो कोई कर सो स्वारथी, अरस परस गुन देत।
किए बिना कर सूरमा, परमारथ के हेत॥

अर्थात जो कोई परस्पर लेता-देता है तो ये सब स्वार्थ हैं, पर दूसरों से कुछ न पाने पर भी दूसरों की

भलाई में जो तत्पर है, वो ही वास्तव में शूरवीर है। निस्संदेह परोपकार परमात्मा का साक्षात् पूजन है। यह स्वयं में बहुत बड़ी साधना है, जिसे सच्चे व निष्काम भाव से करते रहने पर व्यक्ति को वह सब कुछ प्राप्त हो जाता है, जो बड़ी-बड़ी दुर्लभ साधनाओं से ही प्राप्त कर पाना संभव है। यहाँ तक कि मुक्ति का द्वार भी इसी माध्यम से खुल जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी रामचरितमानस में भगवान श्रीराम के माध्यम से जटायु को यही संदेश देते हैं—

परहित बस जिन्ह के मन माहीं।
तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा।
देउँ काह तुम्ह पूरनकामा॥

अर्थात—जिनके मन में दूसरे का हित बसता है, समाया रहता है, उनके लिए जगत में कुछ भी दुर्लभ नहीं है, वे मेरे परमधाम के निवासी होते हैं। सचमुच कितनी अद्‌भुत है परोपकार की महिमा। इसलिए हमें इसी पथ का पथिक बनना चाहिए। ❑

राजा जनक अपनी साज-सज्जा के साथ मिथिलापुरी के राजपथ से होकर गुजर रहे थे। उनकी सुविधा के लिए सारा रास्ता पथिकों से शून्य बनाने में राजकर्मचारी लगे हुए थे। राजा की शोभायात्रा निकल जाने तक यात्रियों को अपने आवश्यक काम छोड़कर जहाँ-तहाँ रुका रहना पड़ रहा था।

अष्टावक्र को हटाया गया तो उन्होंने हटने से इनकार कर दिया और कहा—प्रजाजनों के आवश्यक कार्यों को रोककर अपनी सुविधा का प्रबंध करना राजा के लिए उचित नहीं। राजा अनीति करे तो ब्राह्मण का कर्त्तव्य है कि उसे रोके और समझाए। सो आप राज्याधिकारीगण राजा तक मेरा संदेश पहुँचाएँ और कहें कि अष्टावक्र ने अनुपयुक्त आदेश को मानने से इनकार कर दिया है। वे हटेंगे नहीं और राजपथ पर ही चलेंगे।

राज्याधिकारी कुपित हुए और अष्टावक्र को बंदी बनाकर राजा के पास ले पहुँचे। जनक ने सारा किस्सा सुना तो वे बहुत प्रभावित हुए और कहा—"इतने तेजस्वी ब्राह्मण जहाँ मौजूद हैं, जो राजा तक को सत्पथ दिखाने का साहस कर सकें तो वह देश धन्य है। नीति और न्याय के पक्ष में आवाज उठाने वाले सत्पुरुषों के द्वारा ही जनमानस की उत्कृष्टता स्थिर रह सकती है। ऐसे निर्भीक ब्राह्मण राष्ट्र की सच्ची संपत्ति हैं। उन्हें दंड नहीं, सम्मान दिया जाना चाहिए।"

राजा जनक ने अष्टावक्र से क्षमा माँगी और कहा—"मूर्खतापूर्ण आज्ञा चाहे राजा की ही क्यों न हो, तिरस्कार के योग्य है। आपकी निर्भीकता ने हमें अपनी गलती समझने और सुधारने का अवसर दिया। आज से आप राजगुरु रहेंगे और इसी निर्भीकता से सदा न्याय पक्ष का समर्थन करते रहने की कृपा करेंगे।" अष्टावक्र ने वह प्रार्थना जनहित की दृष्टि से स्वीकार कर ली।

गुरु की परीक्षा से तपे एकनाथ

एकनाथ एक सच्चे शिष्य थे और जनार्दन स्वामी एक समर्थ गुरु। एकनाथ का अपने गुरु के प्रति संपूर्ण समर्पण का भाव था। वे अपने गुरु को अपना सर्वस्व सौंप चुके थे। अगाध श्रद्धाभाव से वे सदा आप्लावित रहते थे। उनकी साँसें केवल अपने गुरु के लिए ही चलती थीं। उनका प्रत्येक कर्म केवल अपने गुरु को ही समर्पित होता था। वे स्वयं कुछ भी विचार नहीं करते थे, वरन जो गुरु-आज्ञा होती थी, उसे ही अपने जीवन का उद्देश्य मानकर उस पर चिंतन-मनन करते थे। उनके हृदय का प्रत्येक स्पंदन अपने गुरु के लिए ही होता था। इसके बदले में उनके गुरु का भी उनके प्रति अगाध प्रेम था।

एक दिन जनार्दन स्वामी ने उनसे कहा—"एकनाथ! तुम्हें कुछ चाहिए तो अवश्य बता देना। मन में कोई इच्छा हो तो भी बता देना।" एकनाथ ने कहा—"हे गुरुदेव! मुझे कुछ भी नहीं चाहिए और न मेरे मन में कोई इच्छा है। अगर होगी तो भला आपसे कैसे छिपी रह सकती है। आप तो मेरे जीवन के सर्वस्व हैं। ऐसी कौन-सी बात है, ऐसा कौन-सा रहस्य है, ऐसा कौन-सा गुप्त संस्कार है, जो आपको पता न हो।" जनार्दन स्वामी के अधरों पर एक मुस्कान उभर आई। वे मुस्कराने लगे और गंभीर हो गए। शिष्य एकनाथ अपने गुरु की इस मुस्कान से परिचित थे। उनको लगा कुछ तो ऐसा है, जो उनके गुरु ने उन्हें ऐसा कहा। इसके पीछे कोई-न-कोई कारण अवश्य होगा—ऐसा उन्होंने सोचा।

एकनाथ का जीवन विचित्रताओं से भरा था। बचपन से ही उनको गुरु की तलाश थी, जो उन्हें सन्मार्ग की ओर ले जाएँ। कहा जाता है किभानुदास के पुत्र चक्रपाणि अपने समय के प्रकांड विद्वान संत थे। वे विद्वानों का सम्मान करते थे और दीन-दुःखियों की सेवा भी अवसर मिलने पर करते रहते थे। उनकी प्रबल इच्छा थी कि किसी महान संत का उनके घर में आगमन हो, जो समाज व मानवता की सेवा करे। चक्रपाणि के पौत्र संत एकनाथ का जन्म सन् 1533 ई0 में मूल नक्षत्र में हुआ था। मूल नक्षत्र में जन्म लेने वाली संतान माता-पिता के लिए घातक मानी जाती है। एकनाथ के जन्म लेने के कुछ ही दिनों के अंतराल में उनके माता-पिता उन्हें छोड़कर सदा के लिए चले गए और वे दादा चक्रपाणि के द्वारा ही पालित-पोषित हुए।

एकनाथ जन्म से ही भक्तिपथ पर चल पड़े थे। कुछ लोग धरती पर आकर अपने कर्म काटकर तपस्या करके अध्यात्म के पथ पर अग्रसर होते हैं और कुछ लोग ये सब लेकर ही पैदा होते हैं। एकनाथ ऐसे ही थे। बचपन से ही उन्हें श्रेष्ठ जनों का पूर्ण संरक्षण प्राप्त हुआ था, इसलिए उनका स्वाध्याय एवं सत्संग का क्रम चल पड़ा। इनका उनके जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उनकी स्मरणशक्ति तीव्र थी, इसलिए जो कुछ भी वे पढ़ते या सुनते थे, उन्हें सब कुछ याद हो जाता था।

एक बार उन्हें एक महात्मा ने कहा—"वत्स! जीवन में गुरु का आगमन, शिष्य के जीवन की सबसे बड़ी घटना होती है, परंतु गुरु को पहचाना नहीं जा सकता है, उन्हें समझा नहीं जा सकता, उन्हें जाना नहीं जा सकता।" एकनाथ के मन में तीव्र उत्कंठा हुई। उन्होंने पूछा—"हे महात्मन्! गुरु को पहचाना नहीं जा सकता है, खोजा नहीं जा सकता है तो फिर गुरु की प्राप्ति किस विधि से होती है।" महात्मा ने कहा—"वत्स! गुरु जब कृपा करते हैं तो ही शिष्यत्व की घटना घटती है। गुरु की कृपा से ही उनका सान्निध्य प्राप्त होता है।"

एकनाथ बचपन में शिव मंदिर में भगवान शिव की आराधना करते रहते थे। वे जब बारह वर्ष के हुए तो शिव मंदिर में एक देववाणी सुनाई दी—वत्स! तुम यहाँ से देवगढ़ की ओर प्रस्थान करो। वहाँ तुम्हें तुम्हारे भावी गुरु के दर्शन होंगे। वे ही तुम्हारे गुरु जनार्दन स्वामी हैं। वे ही तुम्हें विधिवत् गुरुदीक्षा देकर तुम्हारा मार्गदर्शन करेंगे। वे ही तुम्हारे जीवन को इस संसार-सागर से मुक्त करेंगे। इस देववाणी को सुनकर एकनाथ एक दिन चुपचाप देवगढ़ के लिए रवाना हो गए। उन्होंने बड़ी ही व्यग्रता से पैदल चलकर उस मार्ग को तय किया। बारह वर्ष के

एक बालक के लिए यह अत्यंत दुष्कर कार्य था, परंतु एकनाथ तो जन्मे ही इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए थे।

बालक एकनाथ अपने गुरु जनार्दन स्वामी को देखकर भावविभोर हो उठे और उनके चरणों में गिरकर साष्टांग प्रणाम किया। उनकी आँखें नम हो गईं। वे भावविभोर हो उठे। जनार्दन स्वामी को उन्हें देखते ही पता चल गया कि वे ही एकनाथ हैं। गुरु, शिष्य को अपने ढंग से गढ़ता है। गुरु अपनी तपस्या के अमृत भंडार से शिष्य के चित्त में जड़ जमाए संस्कारों को गलाने में, उनका परिष्कार करने में अपनी ऊर्जा लगाता है। उसके व्यक्तित्व को गढ़ने में, रूपांतरित करने में उसे विविध प्रकार की कष्टसाध्य प्रक्रियाओं से गुजारना पड़ता है। इससे उत्पन्न कष्ट के भार को गुरु स्वयं सहन करता है, केवल कुछ अंश को जितना शिष्य वहन कर सकता है, उसे ही सद्गुरु शिष्य को देते हैं।

एकनाथ ने अपने गुरु की सेवा में स्वयं को समर्पित कर दिया। गुरु जनार्दन स्वामी ने अत्यंत प्रसन्न होकर उसे गुरुदीक्षा प्रदान की। जनार्दन स्वामी के गुरु भगवान दत्तात्रेय थे। जो भगवान विष्णु के 24 अवतारों में से एक थे। एकनाथ के मन में अपने दादागुरु भगवान दत्तात्रेय के दर्शन करने की इच्छा उत्पन्न हुई। उनकी इच्छा भाँप कर जनार्दन स्वामी जी ने कहा—"वत्स! तुम तैयार हो जाओ। हम लोग देवगिरि के जंगल में चलते हैं। याद रखना यहाँ पर केवल मेरे गुरु के अलावा और कोई नहीं आ सकता। वे किसी भी रूप में वहाँ आ सकते हैं। यदि वे भयंकर रूप में भी प्रकट हों तो भी भयभीत मत होना। उनकी स्तुति करना।"

जनार्दन स्वामी एकनाथ को लेकर देवगिरि के जंगल में स्थित एक पहाड़ की चोटी पर गए, जहाँ पर एक मनोरम झील थी। वहीं पर एक पागल जैसा उन्मत्त व्यक्ति, जिसके बाल बिखरे हुए थे कई कुत्तों के साथ आया। वह अजीब-सी हरकत कर रहा था। उसके साथ एक कुतिया भी थी। वह बोला—"ये अपने साथ किसको ले आया है। मना किया था न कि किसी और को साथ में मत लाना। अच्छा इस कटोरी में कुतिया का दूध दुहकर ले आ।"

जनार्दन स्वामी उनके आदेश का पालन करते हुए कुतिया का दूध दुहकर ले आए। पहले उस पागल ने उसे पिया, फिर उस कटोरी को जनार्दन स्वामी को दिया। उन्होंने भी उसे पिया। इसके पश्चात इस पागल ने कहा—"जनार्दन! इस लड़के को इस कटोरे को दे दो और शेष दूध पीने को कहो, फिर उसे साफ करके लाओ, लो कहो।" जनार्दन स्वामी ने दूध की कटोरी को एकनाथ को पकड़ा दिया।

एक पल के लिए तो एकनाथ को अजीब-सा लगा कि कुतिया के जूठे दूध को कैसे पिएँ? उन्हें तत्क्षण याद आया कि यहाँ दादा गुरु के अलावा कोई और आ नहीं सकता है। उन्हें अपने गुरु की बात भी याद आई कि मंत्र, अक्षर नहीं होता और गुरु, इनसान नहीं होता। गुरु कैसा भी हो सकता है, उसे सामान्य बुद्धि से समझा नहीं जा सकता है। वह किसी भी रूप में दिख सकता है। एकनाथ ने प्रेमपूर्वक उस कटोरे का दूध पिया और झील के जल से प्रक्षालित करके ले आए। उस पागल ने प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः॥

—ऋ० 5/44/14

अर्थात जो जाग्रत हैं; उन्हीं से ऋचाएँ अपेक्षाएँ रखती हैं। जाग्रतों को ही सामगान का लाभ मिलता है। जाग्रतों से ही सोम मित्रभाव से रहते हैं।

और अपने वास्तविक स्वरूप में खड़े हो गए। वे ही भगवान दत्तात्रेय थे। भगवान दत्तात्रेय प्रसन्न होकर बोले—"वत्स! तुम शूलभंजन पर्वत पर जाकर तपस्या करो। वहीं तुम्हें तपस्या में सफलता मिलेगी और चित्त निर्मल होगा।"

एकनाथ भगवान दत्तात्रेय और गुरु जनार्दन स्वामी को साष्टांग प्रणाम करके देवगिरि के पास ही स्थित शुलभा पर्वत, जिसे शूलभंजन कहा जाता है, पर पहुँच गए। यह स्थल ऋषि मार्कण्डेय की तपस्थली रहा है। इस पर्वत पर सूर्यकुंड है। नित्य स्नान करने के बाद वे यहाँ तपस्या करने लगे। तपस्या के दौरान एक साँप आता और उनके शरीर से लिपट जाता था। यहीं उन्हें भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन हुए थे। इस तरह एक शिष्य की इच्छा पूरी हुई और उनका जीवन भी सफल हुआ। ☐

महाकवि घाघ की लोकोपयोगी रचनाएँ

हमारे देश में अनेक संत, कवि एवं महाकवि हुए हैं। उनमें से अधिकांशतः भक्तिमार्ग के साधक रहे हैं, किंतु मध्यकाल में मुगल सम्राट अकबर के समय में महाकवि घाघ भड्डरी हुए हैं, जिन्होंने भक्ति की परंपरा से हट कर विज्ञान के क्षेत्र में कविताएँ की हैं। उन्होंने नक्षत्रों और ग्रहों की गति की गणना करके उनके प्रभावों का मूल्यांकन करते हुए भारतीय कृषक जीवन के हित चिंतन में वर्षा और कृषि संबंधी कविताएँ की हैं। अनुभव के सार के रूप में ये कहावतें कही गईं। इनमें कृषि व मौसम विज्ञान के संदर्भ में उनके द्वारा की गई इतनी सटीक भविष्यवाणियाँ हैं कि इनको देखते हुए महाकवि माघ को यदि कृषि व मौसम वैज्ञानिक कहा जाए तो इसमें कोई संदेह नहीं है।

महाकवि घाघ भड्डरी को कृषि संबंधी सूक्ष्म बातों व मौसम के बदलते रुख का अद्वितीय ज्ञान था। इनकी कविताओं व कहावतों में प्रकृति के ऐसे अद्भुत संयोग व उनसे संबंधित गूढ़ बातें निहित हैं, जो यथार्थ में आज भी प्रतिफलित होती हैं। यही कारण है कि ग्रामीण इलाकों के किसान आज भी इन्हें कंठस्थ किए हुए हैं। जैसे—

सर्व तपै जो रोहिनी, सर्व तपै जो मूर।
परिवा तपै जो जेठ की, उपजै सातो तूर॥

यदि रोहिणी भर तपे और मूल भी पूरा तपे और ज्येष्ठ की प्रतिपदा तपे तो सातों प्रकार के अन्न पैदा होंगे।

शुक्रवार की बादरी, रही सनीचर छाय।
तो यों भाखै भड्डरी, बिन बरसे ना जाए॥

यदि शुक्रवार के बादल शनिवार को छाए रह जाएँ तो भड्डरी कहते हैं कि वह बादल बिना पानी बरसे नहीं जाएगा।

भादों की छठ चाँदनी, जो अनुराधा होय।
ऊबड़ खाबड़ बोय दे, अन्न घनेरा होय॥

यदि भादों सुदी छठ को अनुराधा नक्षत्र पड़े तो ऊबड़-खाबड़ जमीन में भी उस दिन अन्न बो देने से बहुत पैदावार होती है।

अद्रा भद्रा कृत्तिका, अद्र रेख जु मघाहि।
चंदा ऊगै दूज को सुख से नरा अघाहि॥

यदि द्वितीया का चंद्रमा आर्द्रा नक्षत्र, कृत्तिका, श्लेषा या मघा में अथवा भद्रा में उगे तो मनुष्य सुखी रहेंगे।

सोम सुक्र सुरगुरु दिवस पौष अमावस होय।
घर-घर बजे बधावनो, दुःखी न दीखै कोय॥

यदि पूस की अमावस्या को सोमवार, शुक्रवार, बृहस्पतिवार पड़े तो घर-घर बधाई बजेगी, कोई दुःखी न दिखाई पड़ेगा।

सावन पहिले पाख में दसमी रोहिनी होय।
महंग नाज अरु स्वल्प जल, विरला विलसै कोय॥

यदि श्रावण कृष्ण पक्ष में दशमी तिथि को रोहिणी हो तो समझ लेना चाहिए अनाज महँगा होगा और वर्षा स्वल्प होगी, विरले ही लोग सुखी रहेंगे।

आस-पास रबी बीच में खरीफ।
नोन मिर्च डाल के, खा गया हरीफ॥

खरीफ की फसल के बीच में रबी की फसल अच्छी नहीं होती।

आद्रा में जो बोवै साठी। दुःखै मारि निकारे लाठी॥

जो किसान आर्द्रा में धान बोता है, वह दुःख को लाठी मारकर भगा देता है।

पुरुवा रोपे पूर किसान। आधा खखड़ी आधा धान॥

पूर्वा नक्षत्र में धान रोपने पर आधा धान और आधा पैया (छूछ) पैदा होता है।

गेहूँ बाहें। धान बिदाहें॥

गेहूँ की पैदावार अधिक बार जोतने से और धान की पैदावार बिदाहने (धान होने के चार दिन बाद जोतवा देने से) अच्छी होती है।

रोहिनी जो बरसै नहीं, बरसे जेठा मूर।
एक बूँद स्वाती पड़ै, लागै तीनिउ नूर॥

यदि रोहिणी में वर्षा न हो, पर ज्येष्ठा और मूल नक्षत्र बरस जाएँ तथा स्वाति नक्षत्र में भी कुछ बूँदें पड़ जाएँ, तो तीनों अन्न (जौ, गेहूँ और चना) अच्छे होंगे।

अषाढ़ मास पूनो दिवस, बादल घेरे चंद्र।
तो भड्डरी जोसी कहैं, होवे परम अनंद॥

यदि आषाढ़ी पूर्णिमा को चंद्रमा बादलों से ढका रहे, तो भड्डरी ज्योतिषी कहते हैं कि उस वर्ष आनंद-ही-आनंद रहेगा।

जो बरसे पुनर्वसु स्वाती।
चरखा चलै न बोलै ताँती॥

पुनर्वसु और स्वाति नक्षत्र की वर्षा से किसान सुखी रहते हैं कि उन्हें और ताँत चलाकर जीवन निर्वाह करने की जरूरत नहीं पड़ती।

हस्त बरस चित्रा मँडराए।
घर बैठे किसान सुख पाए॥

हस्त नक्षत्र में पानी बरसने और चित्रा में बादल मँडराने से (क्योंकि चित्रा की धूप बड़ी विषाक्त होती है) किसान घर बैठे सुख पाते हैं।

इस तरह महाकवि घाघ ने मौसम—विशेषकर वर्षा, कृषि, अनाज, अकाल या सुकाल संबंधी अनेक तरह की कहावतें व दोहे कहे हैं, जो मौसम की भविष्यवाणियाँ करते हैं। भविष्यवाणी करने के कारण ही महाकवि घाघ को भड्डरी कहा गया, भड्डरी अर्थात भविष्यवाणी करने वाला। इनका जन्म कन्नौज में संवत् 1753 में कहा गया है। यहीं से ये देश भर में घूमे और अपनी कहावतों का प्रचार-प्रसार किया। बाद में इनके वंशज इन कहावतों का प्रचार-प्रसार करने के लिए देश भर में फैल गए। आज भी कश्मीर, पंजाब, राजपूताना, काठियावाड़, गुजरात, महाराष्ट्र, दक्षिण भारत, उड़ीसा, बंगाल, असम, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश तथा अन्य प्रांतों में इनकी कहावतें भिन्न-भिन्न भाषाओं व बोलियों में मिलती हैं।

महाकवि घाघ भड्डरी की कहावतों का ही यह प्रभाव है कि भारत में वर्षा के संबंध में किसानों का ज्ञान बड़ा सटीक है। उनका प्रकृति का निरीक्षण बड़ा अद्भुत है। गिरगिट, बनमुरगी, साँप, गौरैया, मेंढ़क, चींटी, बकरी आदि जीवों की गतिविधि और हवा के रुख और आकाश के रंग को देखकर वे वर्षा का सटीक अनुमान कर पाते थे। वे पौष और माघ का वातावरण देखकर ही भादों में वृष्टि का अनुमान कर लेते थे। पौष और माघ में हवा का रुख और बादल-बिजली देखकर वे यह बता सकते थे कि सावन और भादों में कब व कितनी वर्षा होगी। वे मानते थे कि ज्येष्ठ का महीना यदि बिना बरसे बीत गया तो सावन-भादों में अच्छी वर्षा होगी।

नक्षत्रों, राशियों और दिनों के संबंध में किसानों के बीच महाकवि घाघ भड्डरी की बहुत-सी ऐसी कहावतें आज भी प्रचलित हैं, जो सच ठहरती हैं। जैसे—
मंगलवारी होय दिवारी, हँसै किसान रोवे बैपारी।
यदि मंगलवार को दीवाली पड़े, तो अन्न इतना सस्ता हो जाता है कि उससे किसानों को बहुत लाभ होता है और व्यापारियों को घाटा लगता है।

घाघ भड्डरी संस्कृत भाषा के भी ज्ञाता थे और इनकी अनेक कहावतें 'मेघमाला' नामक संस्कृत ग्रंथ में भी प्राप्त होती हैं, किंतु समय की माँग के अनुसार—इन्होंने अपने ज्ञान को लोकभाषा यानी जनभाषा हिंदी में प्रस्तुत करने का निर्णय लिया, जो भारतीय कृषक समाज के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। ❑

विद्यार्थी जीवन में एक बार गोपाल कृष्ण गोखले के कक्षाध्यापक ने एक कठिन प्रश्न पूछा। प्रश्न थोड़ा कठिन था, इसलिए कोई विद्यार्थी उसे हल नहीं कर पा रहा था। मात्र गोपाल कृष्ण गोखले ही ऐसे विद्यार्थी थे, जिन्होंने उसका सही उत्तर बताया। इससे प्रसन्न होकर कक्षाध्यापक ने उन्हें पुरस्कृत करने का निर्णय लिया। पुरस्कार प्राप्त करते समय उन्होंने कक्षाध्यापक से कहा—''गुरुजी! इस पुरस्कार का वास्तविक अधिकारी मैं नहीं हूँ। मैंने किसी और से पूछकर यह उत्तर बताया था। इसलिए यह पुरस्कार उसे ही मिलना चाहिए।'' अध्यापक महोदय ने गोपाल के इस साहस की बहुत प्रशंसा की और बोले—''अब यह पुरस्कार तुम्हें तुम्हारी ईमानदारी के लिए दिया जा रहा है।''

विक्षोभ के वर्ष

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव अखण्ड ज्योति पत्रिका का 'अपनों से अपनी बात' वाला संपादकीय आलेख अन्य सारे लेखों को भेजने के उपरांत ही तैयार किया करते थे। इसके माध्यम से वे कार्यकर्त्ताओं से सीधा संवाद तो करते ही थे, साथ ही इस लेख में गुरुदेव सामयिक संदेश व भविष्य की योजनाएँ भी सन्निहित कर दिया करते थे। अखण्ड ज्योति का आवरण पृष्ठ सामान्य रूप से मथुरा में ही तैयार हुआ करता था, परंतु जून, 1975 का आवरण पृष्ठ पूज्य गुरुदेव ने शांतिकुंज से ही तैयार करके भिजवाया। उसमें एक बहुरंगा चित्र था, जो रेखाओं से बनाया गया था। इस रेखांकन में भगवान श्रीकृष्ण युद्ध के मैदान में खड़े थे। उनकी उँगली में सुदर्शन चक्र था और सामने अर्जुन हाथ लगाए झुके हुए थे। इस आवरण पृष्ठ को देखने के उपरांत कवर डिजाइन तैयार करने वाले चित्रकार ब्रजकिशोर को भी एक अलौकिक-सी अनुभूति हुई। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण..........

अखण्ड ज्योति का आवरण पृष्ठ बदलने की यह घटना दो, चार दिन याद रही और यादों में धुँधली होने लगी। आवरण छप गया, पत्रिका बाइंड हो गई और डाक में भेज देने के साथ मथुरा में कार्यकर्त्ताओं के लिए भी बात सामान्य हो गई, लेकिन कुछ सजग साधकों के लिए यह घटना सामान्य नहीं थी। गुरुदेव के साथ वर्षों से काम कर रहे सत्यभक्त जी ने नए आवरण की बात तपोभूमि में ही सुनी थी और सुनते ही कहा था गुरुदेव ने इस तसवीर के जरिए गायत्री परिवार और समाज को विशेष संदेश दिया है।

20 जून सायंकाल की आरती के बाद उन्होंने कार्यकर्त्ताओं के चर्चा करने पर कहा था। उनकी राय सुनकर कार्यकर्त्ताओं ने पूछ ही लिया था कि यह विशेष संदेश क्या है? सत्यभक्त जी ने कहा कि इस समय देश-समाज की जो हालत है उसमें गुरुदेव कहना चाह रहे हैं कि राजनीति विफल रही। उसके हाथों सौंपी गई कमान ठीक से सँभली नहीं और समाज में अराजक और उपद्रवी स्थितियाँ बन गईं। समाज को दिशा देने का काम अब 'धर्मतंत्र' के हाथों संपन्न होगा। भगवान स्वयं युग की कमान सँभालेंगे-उसे दिशा देंगे और नया समाज रचेंगे। इसके लिए कुछ समय तक कष्ट और विग्रह की स्थितियाँ सभी को झेलनी पड़ेंगी।

जून 1975 की वे तिथियाँ सचमुच दिनोदिन विकट होती जा रही थीं। यों उथल-पुथल का दौर पिछले कई वर्षों से चल रहा था। आजादी के अट्ठाईस वर्ष पूरे होते-होते भारत में लोकतंत्र एक बड़े संकट में फँसने लगा। उन दिनों संकट का जो स्वरूप सामने खड़ा दिखाई दे रहा था, उसकी पृष्ठभूमि 1973 के आस-पास बनने लगी थी। उस समय देश में मंदी, बेरोजगारी, महँगाई और आवश्यक वस्तुओं की कमी लोगों का जीना दिनोदिन दूभर करने लगी। इससे समाज में असंतोष फैलना शुरू हुआ। असंतोष के फैलते ही देश के विभिन्न भागों में हड़तालों और आंदोलनों की लहर चलने लगी। इसकी चरम परिणति 1974 में देशव्यापी रेल हड़ताल के रूप में देखने को मिली। यह हड़ताल 22 दिन तक चली और आखिर में तोड़ दी गई।

असंतोष का उबाल

कानून और व्यवस्था की हालत लगातार बिगड़ती ही जा रही थी। हड़तालें, प्रदर्शन और जलूस हिंसक हो उठते थे। 1974 में 22 दिन चली रेल हड़ताल तो तोड़ दी गई, पर उसका असर काफी दिन तक रहा। हड़ताल तोड़ देने और मजदूरों की कोई भी माँग नहीं मानने के कारण सरकार की लोकप्रियता में बुरी तरह गिरावट हुई। दूसरे क्षेत्रों के मजदूर और कर्मचारी भी असंतोष के मारे उबलने

लगे। आर्थिक संकट का दौर तो 1972-73 से ही शुरू हो गया था। उस समय का कुख्यात तेल संकट, विश्व बाजार में कच्चे तेल की कीमतों में चार गुना उछाल, परिणामस्वरूप खाद और पेट्रोलियम पदार्थों की कीमतों में बेतहाशा वृद्धि, विदेशी मुद्रा भंडार का खाली होना, गहराती हुई आर्थिक मंदी और इस सबके साथ कीमतों का लगातार बढ़ते जाना। ये स्थितियाँ गरीब और मध्य वर्ग, दोनों को प्रभावित कर रही थीं। उनकी हताशा असंतोष के रूप में कानून व्यवस्था के लिए चुनौती खड़ी करने लगी थी। घेराव, चक्काजाम और काम बंद जैसी गतिविधियाँ जोर पकड़ रही थीं। कई कॉलेज और विश्वविद्यालय लंबे समय के लिए बंद कर दिए गए। सन् 1973 में उत्तर प्रदेश में प्रादेशिक सेना ने बगावत कर दी। उस पर काबू पाने के लिए सेना को भेजा गया। प्रादेशिक सेना और पुलिस में मुठभेड़ हुई। उसमें पैंतीस सिपाही और सैनिक मारे गए। इधर समाज में असंतोष, विक्षोभ और अव्यवस्था का बोलबाला बढ़ता ही जा रहा था। उससे निपटने में सरकार निरंतर अक्षम होती जा रही थी। राज्य सरकारें तो विफल हो ही रही थीं, केंद्र सरकार भी निरुपाय-सी देख रही थी।

अव्यवस्था और आर्थिक दुर्दशा से उत्पन्न प्रतिक्रिया में गुजरात और बिहार में सरकार के खिलाफ जबरदस्त आंदोलन शुरू हुए। गुजरात में इस आंदोलन की कमान छात्रों ने सँभाली। जनवरी, 1974 में गुजरात में उस समय भारी उथल-पुथल मच गई, जब अनाज, मिट्टी के तेल और रसोई ईंधन—लकड़ी, कोयला आदि और अन्य दैनंदिन उपयोगी वस्तुओं की कीमतें आसमान छूने लगीं। इस महँगाई और सरकारी स्तर पर मची लूट-खसोट से क्षुब्ध लोगों का आक्रोश भड़क उठा और शहरों, कस्बों में छात्र आंदोलन के रूप में फूट पड़ा। आंदोलन इतना उग्र हो गया कि ढाई महीने तक राज्यों में कानून-व्यवस्था नाम की कोई चीज ही नहीं बची। दिन-प्रतिदिन छात्रों, नागरिकों और पुलिस वालों में बढ़ती मुठभेड़ और राजनीतिक अस्थिरता से छुटकारा पाने के लिए केंद्र ने राज्य सरकार से इस्तीफा देने के लिए कहा। इस्तीफा देने के कुछ समय बाद मार्च, 1975 में विधान सभा भंग कर दी गई और जून में नए चुनाव तय हुए।

जिन दिनों गुजरात में आंदोलन छाया हुआ था, उन दिनों बिहार में भी छात्र सक्रिय होने लगे थे। मार्च 1974 में छात्रों ने विधान सभा के घेराव से शुरुआत की और पुलिस के साथ टकराव का एक सिलसिला शुरू हुआ। आंदोलन शुरू होते ही इतना उग्र रूप ले गया कि एक सप्ताह में कोई सत्ताईस लोग मारे गए। बिहार का छात्र आंदोलन इस मायने में भी गुजरात आंदोलन से समानता रखता था कि यहाँ भी विपक्षी दल छात्रों के साथ आ मिले थे। लेकिन आंदोलन इस अर्थ में भिन्न था कि वर्षों पहले राजनीति से संन्यास ले चुके सर्वोदयी नेता जयप्रकाश नारायण छात्रों का नेतृत्व करने के लिए निकल आए थे। जवाहरलाल नेहरू के बाद महात्मा गांधी के राजनीतिक-सामाजिक उत्तराधिकारी के रूप में विख्यात जयप्रकाश नारायण ने संपूर्ण क्रांति का नारा दिया। उन्होंने कहा कि संघर्ष उस पूरी व्यवस्था के खिलाफ है, जिसने हर व्यक्ति को भ्रष्ट होने के लिए विवश कर दिया है। उन्होंने सरकार से त्यागपत्र देने और विधानसभा भंग करने की माँग करते हुए छात्रों और लोगों से कहा कि वे विधायकों पर त्यागपत्र देने के लिए दबाव डालें, सरकारी कार्यालयों में नहीं जाएँ, वहाँ का काम-काज ठप्प हो जाने दें। विधान सभा का घेराव करें, कर देना बंद कर दें और पूरे राज्य में समानांतर जनसरकार बनाएँ।

गुजरात में विधानसभा भंग करने के बाद केंद्र सरकार बिहार में भी इसी तरह की माँग मानने के लिए किसी भी कीमत पर तैयार नहीं थी। उनके दौरे लोगों को बड़ी संख्या में आकर्षित कर रहे थे। सभाओं में हजारों लोग इकट्ठे होते। जेपी उन्हें संगठित होने और आंदोलन चलाने के लिए प्रेरित कर रहे थे। उनके आह्वान, आंदोलन को छात्रों, मध्यवर्ग के लोगों, व्यापारियों और बुद्धिजीवियों के एक हिस्से का व्यापक समर्थन मिला। गैर कांग्रेसी दल पूरी तरह जेपी आंदोलन के साथ जुड़ गए। इन दलों में वामपंथी पार्टियाँ शामिल नहीं थीं। उस समय की राजनीतिक स्थितियों की समीक्षा करते हुए बाद के विश्लेषकों ने लिखा है कि जिन दलों को 1971 के चुनाव में मुँह की खानी पड़ी थी, उन्हें जयप्रकाश नारायण के रूप में एक जननेता मिल गया था। जेपी से उन्हें उम्मीद बँधने लगी थी कि वे उन्हें कांग्रेस के विकल्प के रूप में मान्यता दिला सकते हैं। जेपी के लिए ये संगठन आंदोलन के लिए व्यवस्था बनाने, कार्यकर्त्ता देने और सरकार का मुकाबला करने लायक जनशक्ति जुटाने के माध्यम साबित हो रहे थे।

वह आंदोलन 1974 के अंत तक कमजोर पड़ने लगा था। जेपी आंदोलन की सरगर्मियाँ उस समय थोड़ी

ठंढी पड़ने लगीं, जब उसके छात्र अनुयायी अपनी कक्षाओं में वापस जाने लगे। गुजरात और बिहार में आंदोलन शहरी और कस्बाई मध्यवर्ग को ही आकर्षित कर पाया था। गरीबों और ग्रामीण क्षेत्रों में उसका ज्यादा प्रभाव नहीं हुआ था। जेपी आंदोलन में जनसरकार, जनपंचायतें और जनप्रशासन बनाने-चलाने पर जोर दिया तो सत्ता पक्ष और वामपंथी दलों ने इसे गैरसंसदीय रुझान बताया। वे जेपी आंदोलन को लोकतंत्र विरोधी करार देने लगे। तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी और उनके समर्थकों, ने चुनौती दी। जयप्रकाश नारायण और उनका आंदोलन अपनी परीक्षा आगामी आम चुनाव में कर लें। तब यह साबित हो जाएगा कि आंदोलन को कितना समर्थन मिला हुआ है। उस समय के नियत क्रम के अनुसार आम चुनाव फरवरी-मार्च, 1976 में होने वाले थे। जेपी ने चुनौती स्वीकार की और उनके साथ चल रहे राजनीतिक दलों ने एक राष्ट्रीय सहमति सहयोग समिति बनाई।

ये घटनाएँ अप्रैल-मई, 1975 के आस-पास की हैं। उस समय इंदिरा गांधी द्वारा दी गई चुनौती और जेपी तथा उनके समर्थकों द्वारा उसे स्वीकार करने के बाद लगने लगा कि फैसला लोकतांत्रिक तरीके से ही हो जाएगा। जयप्रकाश नारायण और संपूर्ण क्रांति के नेताओं ने आंदोलन शांतिपूर्वक चलाने की अपील की, साथ ही अपने आप को चुनाव की तैयारी में लगा देने के लिए भी कहा। बहुत तेजी से तो नहीं, पर स्थितियाँ थोड़ी शांत होती दिखाई देने लगीं। गुरुदेव उन दिनों देश, राजनीति में घट रही हलचलों पर बारीक नजर रखे हुए थे। अखबार पढ़ते हुए या कार्यकर्त्ताओं के सामने कभी-कभार कुछ टिप्पणियाँ भी कर देते थे। अप्रैल, 1975 की एक सायंकालीन गोष्ठी में उन्होंने कहा था कि राजनीतिक स्थितियाँ उलटती-पलटती रहती हैं, सुधरती नहीं हैं। उनसे ज्यादा उम्मीद नहीं करनी चाहिए। आज हालात थोड़े सुधरते दिखाई दे रहे हैं, कौन जाने--कल और ज्यादा बिगड़ जाएँ।

राजनीति का संकट

उस दिन अक्षय तृतीया थी। जून महीने की 13 तारीख। शांतिकुंज के सांस्कृतिक मंच पर वानप्रस्थ सत्र के शिविरार्थियों ने एक नाटक खेलने की योजना बनाई। नाटक का नाम था 'परिव्रज्या'। भगवान बुद्ध के अनुयायियों के क्रियाकलाप पर आधारित था। उसमें उपगुप्त नामक एक भिक्षु की जीवनचर्या मंचित की गई। शुरुआत एक स्त्री के कंठ से निकल रही कराह से होती है। उपगुप्त उस कराह को सुनकर रुकता है और उसी दिशा में जाता है। कक्ष में प्रवेश करने पर देखता है कि एक अधेड़ स्त्री बिस्तर पर लेटी हुई है और पीड़ा से छटपटा रही है। उपगुप्त उस स्त्री की परिचर्या करते हैं। वह थोड़ी स्वस्थ होती है, पीड़ा कुछ थमती है तो वह कहती है—"तुम यहाँ कहाँ आ गए उपगुप्त? जिस रूप और सौंदर्य के लोभी श्रेष्ठिजन जो मेरे चारों ओर मँडराते थे, उनमें से कोई नहीं आया। तुम कैसे आ गए?"

उपगुप्त कहता है—"मैं तुम्हें भली भाँति जानता हूँ यशिका। एक दिन तुमने मुझे अपने निवास पर ही रुक जाने के लिए कहा था। मैं प्रव्रज्या पर था और भिक्षा लेकर लौट गया था। तुमने पूछा था कि आते रहना। फिर मैंने कहा था—आऊँगा और ऐसे समय आऊँगा, जब तुम्हें मेरी आवश्यकता होगी।"

कहकर भिक्षु चुप हो गया। यशिका ने कहा—"अब तो नहीं जाओगे।" भिक्षु ने कहा—"जिस तरह आया हूँ, उसी तरह वापस भी जाऊँगा। जहाँ भी पीड़ा और पतन है, वहाँ जाना और विचरण करना मेरा धर्म है।"

जहाज किसी भी दिशा में क्यों न जाए, कंपास की सुई हमेशा उत्तर दिशा में होती है। इसी प्रकार मनुष्य का मन यदि भगवान में लगा रहे तो फिर उसकी जीवन-दिशा कभी नहीं बिगड़ती।

—स्वामी रामकृष्ण परमहंस

नाटक के दूसरे अंक में महास्थविर प्रव्रज्या पर जा रहे भिक्षु से पूछते हैं—"वत्स! उस देश के नागरिक असभ्य हैं। तुम उन्हें उपदेश दोगे तो वे तुम्हें गालियाँ देंगे।" भिक्षु—"मैं उन्हें धन्यवाद दूँगा कि उन्होंने मुझे मारा नहीं।" महास्थविर—"वे तुम्हें मार भी सकते हैं।"

भिक्षु—"मैं उनका आभारी होऊँगा कि उन्होंने मेरे प्राण नहीं लिए।" महास्थविर—"वे तुम्हारे प्राण भी ले सकते हैं।" भिक्षु—"मैं उन्हें धन्यवाद दूँगा कि उन्होंने मुझे इस जीवन से मुक्त कर दिया।" महास्थविर विस्मय से देखते रह जाते हैं। पार्श्व ध्वनि गूँजती है—"धन्य हैं, जो सहिष्णु और करुणावान हैं। भगवान बुद्ध का अनुग्रह उन्हें ही प्राप्त होगा।" ❑

तकनीकी उपयोग में रखें सावधानी
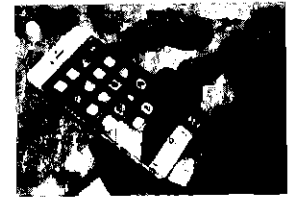
तकनीकी उपकरण आज हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग बन गए हैं। आज हर हाथ में एक मोबाइल है, स्मार्ट फोन है। जहाँ एक ओर इन्होंने हमारी जिंदगी को बड़ा आसान बना दिया है तो वहीं दूसरी ओर इनके कारण कुछ नई आदतें भी हमारी जिंदगी का एक अहम हिस्सा बन गई हैं। इन तकनीकी उपकरणों को एक-दूसरे के साथ संदेश का आदान-प्रदान करने के लिए विशेष तरंगों का उपयोग करना पड़ता है, जिनके माध्यम से हम कहीं पर भी मोबाइल से किसी से भी बात कर सकते हैं, टीवी पर किसी भी चैनल में आने वाले प्रोग्राम देख सकते हैं, इंटरनेट के माध्यम से मनचाही सूचनाओं से अवगत हो सकते हैं, परंतु इनके कारण एक महत्त्वपूर्ण समस्या भी उपजी है। वह यह कि इन तरंगों के कारण हमारे चारों ओर इलेक्ट्रोमैग्नेटिक रेडिएशन का एक जाल-सा बन गया है, जिसके अनेकों दुष्प्रभाव हैं।

उदाहरण के लिए रात्रि में सोने से पहले इन इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों को अपने पास रखना और सोने से पहले इनका इस्तेमाल करना लोगों की एक सामान्य आदत बनती जा रही है, लेकिन यह आदत हमारे तंत्रिका-तंत्र पर बुरा असर डालती है। इतना ही नहीं, बच्चों और युवाओं का सोने से मिनट भर पहले तक वीडियो और मोबाइल गेम्स खेलते रहने से उनके दिमाग पर बुरा असर पड़ता है।

देर तक टीवी देखने या गेम्स खेलने का नुकसान यह होता है कि सोने के लिए प्रयास करने के बाद भी देर तक दिमाग सजग रहता है। इससे तनाव बढ़ता है, जो एड्रेनिल ग्रंथि में बनने वाले तनाव हॉर्मोन के स्तर को बढ़ा देता है। इससे शरीर में उत्तेजना बढ़ती है, जिससे मस्तिष्क को जरूरी आराम न मिलने से भी तंत्रिका तंत्र प्रभावित होता है। इसके अतिरिक्त इन गैजेट्स का उपयोग करने पर इनसे निकलने वाली तरंगें भी हमारे ऊपर प्रभाव डालती हैं। इनसे निकलने वाले इलेक्ट्रोमैग्नेटिक रेडिएशन का स्तर इन उपकरणों के नजदीक बहुत ज्यादा होता है और उसका दायरा लगभग 2 से 3 फीट होता है।

यह रेडिएशन छोटे बच्चों, गर्भवती महिलाओं और बीमार लोगों के लिए बहुत हानिकारक होता है, इसलिए डॉक्टर भी बीमारी की अवस्था में इनसे दूर रहने की सलाह देते हैं। हालाँकि, इनका उपयोग करना हम बंद नहीं कर सकते, लेकिन कुछ सामान्य सावधानियाँ अपना कर इनके दुष्प्रभावों से जरूर बच सकते हैं। जैसे—मोबाइल, टेबलेट या लेपटॉप जैसे गैजेट्स की बैटरी चार्ज करते समय इनका बिलकुल भी उपयोग न करें, रात्रि में सोते समय इन्हें अपने शरीर से 2 से 3 फीट की दूरी पर रखें। 18 साल से कम उम्र के बच्चे और गर्भवती महिलाएँ सिर्फ जरूरत पड़ने पर ही इनका इस्तेमाल करें, मोबाइल उपयोग करते समय हो सके तो ईयरफोन का इस्तेमाल करें।

कई शोधों में इस बात का खुलासा हुआ है कि इन उपकरणों का उपयोग करते समय शरीर से 6 से 8 इंच की दूरी बनाए रखना जरूरी है। लैपटॉप को कभी भी अपने पैरों पर या शरीर के ऊपर रखकर उपयोग न करें, क्योंकि अक्सर लोग विश्राम की अवस्था में अपनी छाती के ऊपर रखकर इनका उपयोग करते हैं। निरंतर ऐसा करने से हृदय रोगों के पनपने की संभावनाएँ बहुत बढ़ जाती हैं। शोध अध्ययनों ने इस बात का खुलासा किया है कि यदि हम इन उपकरणों को 10 से 15 मिनट अपने शरीर के संपर्क में रखते हैं, तो उस स्थान का तापमान कम-से-कम 2 डिगरी बढ़ जाता है।

नासा के शोध संस्थान द्वारा संचालित 'फटीग काउंटरमेजर्स प्रोग्राम' के पूर्व निदेशक मार्क रोसकाइंड का कहना है—"रात के समय मोबाइल, टैबलेट और कंप्यूटर आदि का इस्तेमाल नींद में बाधा पहुँचाता है। इस समय कमरे में चमकती हुई कोई भी चीज मेलेटोनिन के बनने की प्रक्रिया पर असर डालती है। इस हॉर्मोन का काम नींद को नियंत्रित करना होता है।" मोबाइल एप्स स्लीपरेट के सर्वे के अनुसार—बहुत ज्यादा देर तक टीवी देखने वाले वयस्कों को रात में केवल दो से तीन घंटे ही नींद आ पाती है।

ऐसे वयस्कों में से 77 फीसदी व्यक्तियों का दिन सुस्ती व थकावट से भरा हुआ बीतता है। अत: ऐसे में यह सावधानी रखना जरूरी है कि सोने से पहले अपने सभी तकनीकी उपकरण बंद कर दें। इनको अपने शयनस्थल से कुछ दूरी पर रखें और सोने से कम-से-कम 30 मिनट पहले इन उपकरणों का इस्तेमाल पूरी तरह बंद कर दें। टीवी देखने के समय को सीमित करें और अपनी नींद को पर्याप्त समय दें।

यदि कोई व्यक्ति तकनीकी उपकरणों का उपयोग अपनी गोद में रखकर करता है तो इसका प्रभाव यह हो सकता है कि कुछ दिनों में उसकी गरदन की मांसपेशियों में दरद हो; क्योंकि गरदन झुकाकर उपयोग करने से गरदन की मांसपेशियाँ लगातार तनाव झेलती हैं। अत: तकनीकी उपकरणों को गोद में रखकर न इस्तेमाल करें, बल्कि हाथ में उठाकर या किसी स्टैंड पर रखकर इस्तेमाल करें। इसके साथ ही एक जगह और एक ही मुद्रा में देर तक बैठकर इनका इस्तेमाल न करें।

अक्सर लोग अपने कार्यस्थलों पर घंटों कंप्यूटर के आगे बैठकर कार्य करते हैं, लेकिन गलत मुद्रा में बैठकर लगातार की-बोर्ड का इस्तेमाल करने से कार्पल टनल सिन्ड्रोम की समस्या पैदा हो सकती है, जिसमें हाथ की उँगलियाँ काम करना बंद कर देती हैं। गंभीर स्थिति होने पर इसे सर्जरी से ही ठीक किया जाता है। इस बारे में चिकित्सकों का कहना है कि सही शारीरिक मुद्रा हमें कई तकलीफों से बचाती है। इसलिए बैठने वाली कुरसी जितना हो सके, मेज के नजदीक होनी चाहिए। कमर को कुरसी की बैक सपोर्ट से सटाकर रखना चाहिए, इसमें तकिए का सहारा लेना सही नहीं है। इसके साथ ही कुरसी की ऊँचाई इतनी होनी चाहिए कि बैठते समय घुटने 90 डिगरी पर मुड़े हों और की-बोर्ड पर टाइप करते समय कुहनियों को भी मेज पर या कुरसी के साइड हैंडल पर टिकाएँ।

बिना आराम किए लगातार कंप्यूटर, मोबाइल या टेबलेट पर काम करते रहने से जोड़ों, मांसपेशियों, परिसंचरण तंत्र और आँखों पर बुरा असर पड़ता है तथा रक्त के थक्के जमने की आशंका भी बढ़ जाती है। विशेषकर 20 से 40 आयु वर्ग में ड्राइ आई, नजर कमजोर होना व आँखों में खुजली होने के मामले अब तेजी से बढ़ रहे हैं। इनसे बचने के लिए अपनी मेज पर पानी की बोतल रखें और थोड़े-थोड़े समय बाद पानी पीते रहें; क्योंकि हमारे दिमाग, आँख व जोड़ों की प्रणाली को दुरुस्त रखने में पानी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हमें किसी भी एक मुद्रा में आधा घंटे से ज्यादा नहीं बैठना चाहिए। इससे मांसपेशियों पर कम दबाव पड़ता है। नेत्र विशेषज्ञों के अनुसार—लोगों को अपने कंप्यूटर स्क्रीन पर ज्यादा देर नजरें गड़ा कर नहीं बैठना चाहिए और पलकें झपकाने के साथ-साथ आँखों को पानी से धोते रहना चाहिए।

तकनीकी सुविधाओं के कारण आज बड़ी-से-बड़ी गणनाएँ सरलता के साथ संभव हो गई हैं। इसके कारण अधिक सूचनाओं तक हमारी पहुँच बढ़ रही है, पर इससे हमारा नुकसान यह हुआ है कि छोटी-छोटी बातों को याद रखने के लिए हम तकनीकी पर निर्भर हो गए हैं, जिससे हमारी याद्दाश्त प्रभावित होती है। इसके लिए हमें दिमागी व्यायाम करने की भी जरूरत है, जिसमें दिमाग लगाने वाले खेल, जैसे—शतरंज, क्रॉस वर्ड आदि सहायक हैं और बड़ी संख्याओं को याद करने का अभ्यास भी स्मरणशक्ति को बढ़ाने में मददगार है।

विशेषज्ञों का कहना है कि तकनीकी सुविधाओं के कारण आज व्यक्ति एक ही समय पर कई तरह के कार्य करने लगा है, इसके फायदे तो हैं, लेकिन नुकसान भी हैं। फायदे यह हैं कि कई तरह के कार्य कम समय में पूरे हो जाते हैं और नुकसान यह है कि इससे हमारी एकाग्रता में कमी आती है। अत: यदि कार्यकुशलता व एकाग्रता बढ़ानी है, तो एक ही समय में एक ही काम करने की आदत डालें। इससे कार्य को प्रभावी ढंग से निपटाया जा सकेगा और इससे व्यक्ति की कार्यक्षमता भी बढ़ेगी। अपने दिमाग को शांत रखने के लिए व शरीर को सक्रिय बनाए रखने के लिए नियमित रूप से कुछ देर के लिए योग, ध्यान, प्राणायाम व व्यायाम करना जरूरी है; क्योंकि यदि व्यक्ति के पास इनके लिए समय नहीं है, तो फिर उसे बीमारी के लिए समय निकालना पड़ेगा; क्योंकि देर-सवेर इनसे संबंधित बीमारियाँ हमारी शारीरिक व मानसिक कमजोरियों पर आघात करती हैं और हमें अपनी गिरफ्त में ले लेती हैं।

अत: तकनीक से दोस्ती, हमारी सेहत पर भारी पड़ सकती है, यदि हम इसके उपयोग से संबंधित जरूरी बातों के प्रति सावधान व सतर्क न रहें। इसलिए हमें इसका उपयोग करते समय सजग व सचेष्ट रहने की आवश्यकता है, ताकि हम स्वस्थ रह सकें। ❑

अपने देश में कहीं भी जाने पर अपनेपन का एहसास होता है, हर जगह भारतीय संस्कृति की छाप किसी-न-किसी रूप में मिलती है, लेकिन भारत की सीमा से बाहर विदेश जाने पर परायेपन का एहसास होता है; क्योंकि वहाँ की संस्कृति भिन्न है। न तो वहाँ पर अपनों का प्यार है, न सहयोग और न ही निश्चिंतता है। इसलिए बाहर की दुनिया अजनबी-सी प्रतीत होती है। लेकिन दुनिया में कुछ देश ऐसे भी हैं, जहाँ जाने पर हमें अपनेपन का, अपनी संस्कृति का एहसास होता है; क्योंकि वहाँ की भाषा, खान-पान, धार्मिक रीति-रिवाज और यहाँ तक कि संस्कार भी बिलकुल भारतीय हैं। अपने ही देश से शताब्दियों पहले गए भारतीय संस्कृति के अग्रदूतों ने भारत से बाहर जाकर अपने ही ढंग का एक अलग भारत बसाया है। ऐसे ही कुछ देशों की कहानी कुछ इस प्रकार है।

(1) **मॉरीशस**—यह अफ्रीका के दक्षिण पूर्वी छोर पर बसा हुआ एक छोटा-सा द्वीप है, लेकिन इसे देखने पर यही प्रतीत होता है कि यह भारत का ही कोई हिस्सा है। मॉरीशस पर लंबे समय तक फ्रांस का आधिपत्य रहा। भारत में जब अँगरेजों व फ्रांसीसियों के बीच संघर्ष चल रहा था, तब अपनी स्थिति बेहतर बनाने के लिए अँगरेजों की नजर मॉरीशस पर गई और इन्होंने इस पर आक्रमण करके इसे फ्रांसीसियों से छीन लिया और भारत से ले जाकर अनेक लोगों को वहाँ पर बसाया। इनके द्वारा वहाँ पर भारतीय संस्कृति का प्रभुत्व स्थापित हो पाया।

लगभग दो सौ वर्ष पूर्व जब भारतीय यहाँ पहुँचे, तो उन्होंने उसे मारीच देश कहा। उस समय भारतीयों को अपनी भाषा में अभिव्यक्ति की आजादी नहीं प्राप्त थी, उन्हें रामायण व लोकगीत गाने से भी रोका जाता था, ताकि विद्रोह की चिनगारी न पनपे, लेकिन फिर भी भाँति-भाँति के प्रलोभनों व प्रतिबंधों के बावजूद भारतीय लोग चोरी-चोरी अपनी भाषा, संस्कृति व धर्म से जुड़े रहे।

रामायण की अनुगूँज आज भी यहाँ भारतीयों की आस्था का संबल है और श्रीरामचरितमानस की चौपाइयाँ कष्ट में फँसे हुए लोगों के लिए संजीवनी बूटी का काम करती हैं। यहाँ भारतीय विषयों पर न सिर्फ गाँव व गलियों के नाम रखे गए हैं, बल्कि सिनेमाघरों, दुकानों व बसों तक के नाम भारतीय नामों, जैसे—नालंदा, तक्षशिला, सम्राट अशोक, सूर्यवंशी आदि रखे जाते हैं। यहाँ घरों की बनावट में भी भारतीय वास्तुकला का पूरा ध्यान रखा जाता है। मॉरीशस यात्रा के समय लेखक मार्क ट्वेन को यह कहना पड़ा कि भगवान ने पहले मॉरीशस बनाया होगा, फिर उसकी नकल पर स्वर्ग का निर्माण किया होगा। आज भी मॉरीशस में हर भारतवंशी के आँगन में हनुमान जी के चबूतरे और लाल झंडियाँ, सांस्कृतिक मूल्यों की विजय की लघुपताकाएँ बनकर लहरा रही हैं। यहाँ की जीवनशैली में भी भारतीय संस्कृति का प्रतिबिंब साफ दिखता है।

(2) **फिजी**—मॉरीशस के बाद फिजी ही एकमात्र ऐसा देश है, जहाँ भारतीय मूल के नागरिक वहाँ की लोकतांत्रिक व्यवस्था के सर्वोच्च पद 'प्रधानमंत्री' तक पहुँचे हैं। यहाँ की कुल आबादी का 38 प्रतिशत हिस्सा भारतीय समुदाय का है। यहाँ भारतीय घरों में आरती व हनुमान चालीसा के पाठ आमतौर पर सुने जा सकते हैं और भारतीय त्योहारों में सबसे मुख्य पर्व दीपावली भी यहाँ पूरी आस्था व निष्ठा से मनाई जाती है। इस त्योहार को धार्मिक मान्यताओं के साथ-साथ सांप्रदायिक सौहार्द के रूप में भी मनाया जाता है। फिजी में चलने वाले अनेक विद्यालयों में भारतीय तौर-तरीकों से पढ़ाई की व्यवस्था है। भारत की कई आध्यात्मिक व सामाजिक संस्थाओं की शाखाएँ भी यहाँ सक्रिय हैं। यहाँ पर भारतीय संस्कृति की प्रत्येक संस्कार वैदिक तौर-तरीकों से संपन्न कराए जाते हैं।

(3) **थाईलैंड**—यहाँ के 95 प्रतिशत नागरिक बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं और यहाँ के बौद्ध मंदिरों की खूबसूरती अनोखी है और इनकी संख्या 18 हजार से भी

अधिक है। वहाँ की भाषा में मंदिरों को 'वाट' कहा जाता है। बौद्ध धर्म का हीनयान, थाईलैंड का राजधर्म है। बौद्ध मान्यताओं का मुख्य धर्म करुणा है और थाई जीवन पर इसका अमिट प्रभाव है।

इसके अतिरिक्त यहाँ रामायण, श्रीराम व रामलीला से जुड़ी हुई बहुत-सी बातें देखने को मिलती हैं। थाईलैंड के नागरिकों का यह गहरा विश्वास है कि रामायण की कई घटनाएँ उनके अपने देश में घटी थीं। थाईलैंड में भी एक अयोध्या है और श्रीराम के पुत्र लव के नाम पर लवपुरी (लोपबुरी) भी है। इसके साथ ही थाईलैंड की एक नदी का नाम भी सरयू है, जो अयोध्या के निकट ही बहती है और इस तरह थाईलैंड की सांस्कृतिक जीवनधारा में रामायण की संस्कृति समाहित है। यही नहीं, थाईलैंड की अपनी स्थानीय रामायण भी है, जिसे 'रामकियेन' के नाम से जाना जाता है। इस रामायण के रचयिता नरेश राय प्रथम थे। उल्लेखनीय है कि इन्हीं के वंशज आज भी थाईलैंड के शासक हैं।

(4) **कंबोडिया**—विश्व में भगवान विष्णु का सबसे विशाल मंदिर 'अंगकोर वाट' कंबोडिया में ही है, जिसका निर्माण अंगकोर नरेश सूर्य बर्मन द्वितीय 1113-50 ने प्रारंभ किया था। इस मंदिर के जीर्णोद्धार व प्रबंधन का दायित्व भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के पास है। इस मंदिर को देखने के लिए दुनिया भर से लाखों लोग हर साल यहाँ आते हैं। कंबोडिया में हिंदू राजवंश की स्थापना दूसरी शताब्दी में ही हो गई थी। यहाँ भगवान बुद्ध, शिव व श्रीराम की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। यहाँ की लोक संस्कृति के नायक श्रीराम हैं। इसलिए रामायण के कई प्रसंगों को सुंदर ढंग से दीवारों पर यहाँ उकेरा गया है। कंबोडिया की रामायण को 'रामकेर' के नाम से जाना जाता है।

(5) **नेपाल**—भारत के पड़ोसी देश नेपाल में भारतीय आध्यात्मिकता व संस्कृति की जड़ें बड़ी गहरी हैं। यहाँ कहीं पर भी जाने पर यही प्रतीत होता है कि जैसे—हम भारत के ही किसी गाँव या शहर में घूम रहे हों। यहाँ बागमती नदी के समीप स्थित हिंदुओं का प्रसिद्ध पशुपतिनाथ मंदिर है और यहाँ के दुर्लभ रुद्राक्ष की पूरे विश्व में मान्यता है। नेपाल में भारतीयों के विश्वास व श्रद्धा के अनेक केंद्र स्थित हैं और भारत में मनाए जाने वाले सभी तीज-त्योहारों की झलक नेपाल में देखी जा सकती है। नेपाल विश्व का एकमात्र हिंदू राष्ट्र है एवं यहाँ सारे शासकीय कार्य, विक्रम संवत् के अनुसार ही चलते हैं। यहाँ नववर्ष भी विक्रम संवत् के परिवर्तन के साथ मनाया जाता है।

(6) **इंडोनेशिया**—भारत के निकटवर्ती देशों में इंडोनेशिया का बाली द्वीप हिंदू संस्कृति की खुशबू से सराबोर है। ऐतिहासिक बाली द्वीप की संस्कृति विश्व के पर्यटकों को आकर्षित करती है। ऐसी मान्यता है कि यहाँ पर भारतीय संस्कृति की नींव ऋषि मार्कण्डेय ने रखी थी। बाली के हर गाँव में तीन मंदिर होते हैं, जो क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और महेश को समर्पित हैं। इन मंदिरों की सालगिरह बड़ी धूम-धाम से मनाई जाती है। विवाह व अन्य शुभ अवसरों पर यहाँ संस्कृत मंत्रों का उच्चारण किया जाता है और इनके बिना कोई भी शुभ कार्य नहीं होता।

पूरे बाली में हनुमान, राम व गणेश भगवान की मूर्तियाँ देखने को मिलती हैं। इन प्रतिमाओं के निचले हिस्से पर सफेद-काले चेकदार कपड़े पहनाए जाते हैं, जो अच्छाई व बुराई के प्रतीक हैं। यहाँ राजमार्गों पर महाभारतकालीन घटनाओं की प्रतिमाएँ जगह-जगह देखने को मिलती हैं। बाली के लोगों में महाभारत के युद्धस्थल कुरुक्षेत्र को देखने की इच्छा बलवती है और यहाँ के लोग पवित्र गंगा नदी में स्नान व शिव मंदिर के दर्शन को प्राथमिकता देते हैं।

(7) **गयाना**—दक्षिण अमेरिका के उत्तरपूर्व में स्थित गयाना भी भारतीय संस्कृति व इसके मूल्यों के कारण विख्यात है। यहाँ की जनसंख्या में भारतीय मूल के 33 प्रतिशत नागरिक हैं। भारतीय कैलेंडर के अनुसार सभी भारतीय त्योहारों को गयाना में पूरे विधि-विधान से मनाया जाता है और इसमें प्रमुख पर्व दीपावली पर यहाँ राष्ट्रीय अवकाश होता है।

(8) **मलेशिया**—यहाँ रहने वाले भारतीय मूल के लोगों की आस्था रामकथा से गहराई से जुड़ी हुई है और यहाँ के जनजीवन में रामायण मनोरंजन व प्रेरणा का सशक्त माध्यम बनकर उभरी है। यहाँ पर पुतलियों के द्वारा रात्रिकाल में रामायण के प्रसंगों का मंचन किया जाता है, जिनमें भारतीय मूल के लोग पूरी साज-सज्जा तथा तैयारी के साथ सपरिवार सम्मिलित होते हैं।

मलेशिया में रामायण को 'हेकायत सेरीरामा' के नाम से जाना जाता है। यहाँ पर हिंदू समुदाय की आबादी लगभग 8 प्रतिशत है, जिसमें अधिकांश दक्षिण भारतीय

लोग हैं। इसी कारण यहाँ मनाए जाने वाले त्योहारों में दक्षिण भारत की परंपराओं का स्पष्ट प्रभाव है और यहाँ पर भगवान शिव के पुत्र कार्तिकेय के मंदिर भी सर्वाधिक हैं। यहाँ भी दीपावली पर्व के दिन राष्ट्रीय अवकाश रहता है तथा घर के बड़े-बुजुर्ग इस दिन घर-घर जाकर युवाओं को आशीर्वाद व उपहार देते हैं।

(9) श्रीलंका— श्रीलंका के साथ तो भारत का संबंध पौराणिक काल से रहा है। भगवान राम व रावण के मध्य लंका में हुआ युद्ध तो रामायण का आधार है ही, साथ ही भगवान बुद्ध के समय में भी वहाँ पर बौद्ध धर्म का प्रचार विस्तार से हुआ। श्रीलंका के हर नगर एवं हर क्षेत्र में भारतीय संस्कृति की छाप अमिट रूप से देखने को मिलती है। जब स्वामी विवेकानंद शिकागो धर्म महासभा को संबोधित करने के उपरांत पहली बार भारत लौटे तो सबसे पहले उनका जहाज कोलंबो ही पहुँचा था और उन्होंने उसे भारतभूमि कहकर ही संबोधित किया था।

(10) सूरीनाम— सूरीनाम, दक्षिण अमेरिका में स्थित वह देश है, जिसे वहाँ के निवासी भारत का अभिन्न अंग मानते हैं। ऐसी मान्यता है कि देश का नाम भी भगवान सूर्य से निकल करके आया और इसीलिए वह देश सूरीनाम के नाम से विख्यात है। सूरीनाम में अनेक भारतीय मंदिर स्थित हैं और पौराणिक देवी-देवताओं की पूजा-उपासना वहाँ के दैनिक क्रम में सम्मिलित है। सूरीनाम में भारतीय संस्कृति के प्रसार के लिए एक विशेष मंत्रालय भी स्थापित किया गया है।

इस तरह भारत व भारतीय संस्कृति की छाप केवल अपने देश में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी गहराई से रची-बसी है व पुष्पित-पल्लवित हो रही है। अपने देश में भले ही भारतीय संस्कृति की गौरव-गरिमा पर विदेशी संस्कृति हावी हो रही है, लेकिन विदेशों में भारतीय संस्कृति के प्रति लोगों का सम्मान आज भी बरकरार है; क्योंकि यह संस्कृति अपने देश से दूर होने पर भी बड़े ही जतन से सँजोई व सँभाली गई है। ❑

कौशांबी राज्य में एक बार भयंकर अकाल पड़ा। लोग दाने-दाने को मोहताज हो गए। अनाज के भाव आसमान चूमने लगे। निर्धनों की मृत्यु का ताँता लग गया। नगर-के-नगर और गाँव-के-गाँव खाली हो गए। जो थोड़े-बहुत बचे, उन्होंने भी अपने प्राणों की रक्षा के लिए चोरी, ठगी, बेईमानी आदि बुरे कर्म करके धन कमाना और पेट पालना प्रारंभ कर दिया।

इसी नगर में संतोष नाम का एक ईमानदार मजदूर रहता था। उसकी धर्मपत्नी शांति भी बड़ी ईमानदार और पतिपरायण थी। वे दिन भर कड़ी मेहनत करते और जो कुछ मिलता, उसे बच्चों को खिला देते व स्वयं भूखे सो जाते, पर कुछ दिनों में उन्हें भी अन्न का मिलना बंद हो गया। दोनों बच्चे अकाल की भेंट चढ़ गए। एक दिन भूखा-प्यासा संतोष, शांति के साथ घर लौट रहा था। उसने रास्ते में सोने का एक कड़ा पड़ा हुआ देखा। पत्नी को कहीं उसका मोह न जाग पड़े, इसलिए उसने उस कड़े के ऊपर धूल डाल दी।

भगवान इंद्र मजदूरों की इस ईमानदारी से अति प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—"जहाँ ऐसे कर्मठ और ईमानदार लोग रहते हों, वहाँ अकाल नहीं रह सकता।" उस रात खूब जलवृष्टि हुई और पूरे क्षेत्र का अकाल दूर हो गया।

गुरुदेव के साहित्य में संवेदना के विविध आयाम

मानवीय अस्तित्व का केंद्र जिस प्रकार उसका हृदय है, उसी प्रकार इस समग्र सृष्टि का हृदय है—संवेदना। यह इतनी व्यापक अवधारणा है कि इसके बिना सृष्टि के जीवन, गति, लय एवं सौंदर्य की व्याख्या नहीं की जा सकती। संवेदना एक एहसास या अनुभूति है जो मात्र मनुष्य तक सीमित नहीं, वरन इस संपूर्ण सृष्टि में जहाँ कहीं भी जीवंतता, गतिशीलता व हलचल है, वहीं संवेदना का अनुभव न्यूनाधिक रूप में विद्यमान है।

विज्ञान ने मानवेतर प्राणियों में भी संवेदना की सिद्धि के अनेकों प्रयोग किए हैं। इससे यह तो साबित हुआ है कि उनमें संवेदना का अंश निहित है, किंतु इन संवेदनाओं का आधार क्या है? सृष्टि की गति में इनकी भूमिका क्या है? प्राणी व वनस्पति जगत में ये किस रूप में विद्यमान हैं? मानवीय जीवन में इनका परिष्कार कैसे हो सकता है तथा परिष्कृत होने पर ये संवेदनाएँ कैसे परामनोवैज्ञानिक एवं अध्यात्म जगत में चमत्कारिक परिणाम देने में सक्षम हैं—इन प्रश्नों पर विस्तृत विमर्श आवश्यक है।

वैसे तो भारतीय वैदिक संस्कृति की गौरवशाली विचारधारा सदा से संवेदना की व्यापकता की विवेचना करती आई है, किंतु उसे सामयिक शब्दावली में परम पूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने अपने साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। पूज्य गुरुदेव का संपूर्ण जीवन संवेदना से ओत-प्रोत रहा। उनके संवेदनायुक्त हृदय ने जन-जन की पीड़ा को अनुभव किया। अनजानों को भी उन्होंने स्वजन बनाकर विराट गायत्री परिवार की स्थापना की, जिसकी नींव संवेदना पर टिकी थी। ऐसे व्यक्तित्व के साहित्य में संवेदना की जो अनोखी छटा है, वह शायद ही कहीं और परिलक्षित हो।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में प्राच्य अध्ययन विभाग के विभागाध्यक्ष प्रोफेसर जितेंद्र तिवारी के निर्देशन में एवं श्रद्धेय कुलाधिपति के विशेष मार्गदर्शन में इसी विभाग की शोधार्थी अनीता वाजपेयी ने '**आचार्य श्रीराम शर्मा के साहित्य में संवेदना के विविध आयाम**' विषय पर एक महत्त्वपूर्ण शोधकार्य वर्ष 2016 में पूर्ण किया। इसका सार-संक्षेप कुछ इस प्रकार है—

प्रथम अध्याय—'विषय प्रवेश' के अंतर्गत संवेदना के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट करते हुए वर्तमान समय में संवेदना की स्थिति, उसकी समस्याओं एवं समाधानों पर दृष्टि डाली गई है। संवेदना का अर्थ सम-वेदना है। संवेदना, भावों की वह प्रगाढ़ता है, जिसके द्वारा दूसरों की भावनाओं को समझने की क्षमता उत्पन्न होती है। संवेदना का संबंध उन कोमल भावनाओं से है, जिनके माध्यम से अपने दुःख-दरद के समान दूसरों की पीड़ा का भी अनुभव किया जाता है।

वास्तव में संवेदना व्यक्ति के बोध की स्थिति को भी प्रकट करती है। जिसमें जितना संवेदना बोध होगा, उसी के अनुरूप उसमें क्रियात्मक अभिव्यक्ति भी होगी। संवेदना जब सक्रिय होती है तब अस्तित्व की सारी शक्तियों को एक सूत्र में पिरोकर इच्छित लक्ष्य की ओर अग्रसर कर देती है, ऐसे में कोई कार्य दुष्कर नहीं रह जाता। संवेदना की सहजता को स्वार्थ एवं अहं की वृत्तियाँ सोख लेती हैं। इस विकृति का समाधान उदारता एवं सहिष्णुता में निहित है। उदारता हमारे स्वार्थ को पराजित करती है और सहिष्णुता की उष्णता, अहं को गलाती है। इस प्रकार संवेदना की समस्या का उपाय शाश्वत जीवन मूल्यों में उपलब्ध है।

द्वितीय अध्याय—'सृष्टि-संवेदना' में सृष्टि-संवेदना के विभिन्न रूपों एवं विविध विचारधाराओं में सृष्टि में संवेदना के गंभीर तत्त्वों को उजागर किया गया है। इस सृष्टि में प्रत्यक्ष एवं परोक्ष—समस्त चेतनात्मक गतिविधियाँ, संवेदना की कोख से प्रकट हुई हैं। सृष्टि-संवेदना परम सत्ता की चेतन अभिव्यक्ति की प्रथम स्फुरणा है। 'ऋत्' के वैदिक सिद्धांत के माध्यम से सृष्टि की अलंघ्य नैतिक व्यवस्था को उन्नत किया गया है। आचार्यश्री के चिंतन में संवेदना की प्रतीक गायत्री एवं सावित्री के रूप में चेतन व जड़ सृष्टि के विस्तार की बात कही गई है।

▶शक्ति संरक्षण वर्ष◀

तृतीय अध्याय—'वृक्ष-वनस्पतियों में संवेदना' के माध्यम से वृक्ष-वनस्पतियों के अस्तित्व की तात्त्विक चर्चा की गई है। वृक्ष-वनस्पतियों में संवेदन शक्ति की प्रामाणिकता को भले ही आज विज्ञान की देन माना जाता है, किंतु प्राचीनतम शास्त्र ऋग्वेद में इन्हें पूजनीय व जीवंत माना जाता रहा है। भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चंद्र बसु ने पौधों में संवेदनाओं की उपस्थिति को सिद्ध करने के अनेक प्रयोग किए थे। आचार्यश्री ने भी अपने साहित्य में पौधों-वनस्पतियों की संवेदना, उनके प्रयोगों एवं उनके संरक्षण की अनेक विधियों को विवेचित किया है।

चतुर्थ अध्याय—'पशु-पक्षियों में संवेदना' में प्राणी संवेदना के विभिन्न रूपों, पशु-पक्षियों की संवेदनशील शैली, उनमें पारिवारिकता की भावना आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया है। प्राकृतिक जीवन जीने वाले सामान्य से पशु-पक्षी आदि प्राणी भी अतींद्रिय क्षमतावान होते हैं। स्रष्टा ने इन्हें इतना संवेदित किया है कि अनेक भावी परिस्थितियों व घटनाओं का इन्हें पूर्वाभास हो जाता है और ये उसे अपनी सामान्य से भिन्न गतिविधियों द्वारा समझाने का भी प्रयास करते हैं। आचार्य जी के अनुसार सृष्टि में निवास करने वाले सभी प्राणियों को प्रकृति व परमात्मा का प्यार, संरक्षण व अनुदान मिला हुआ है।

पंचम अध्याय—'मानवीय संवेदना के विविध आयाम' मानवीय संवेदना के स्वरूप, आयाम एवं उसके विकास-विस्तार का प्राकट्य करता है। मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति का आधार परमात्मा व प्रकृति के मध्य के अंतर्संबंधों पर केंद्रित है। संवेदना के विकास क्रम में मनुष्य का जीवन संवेदना के उस तल पर स्थित है, जहाँ से परवर्ती और पूर्ववर्ती संवेदना के आयामों को संगठित रूप में देखा जा सकता है।

वृक्ष-वनस्पतियों, पशु-पक्षियों अथवा इतर प्राणी जगत की संवेदना की सीमाएँ अपने व प्रकृति के मध्य तक सीमित हैं, किंतु मानवीय संवेदनाओं में उच्चस्तरीय संवेदना के क्षेत्र में प्रवेश करने की सामर्थ्य भी है। स्वयं को जीवात्मा रूप में अनुभव करने पर ही मानवीय जीवन में संवेदना के वे सभी आयाम खुल सकते हैं, जो संवेदनात्मक विकास क्रम—जड़, प्राण, मन, आत्मा आदि रूपों तक की पूर्णता प्रदान कर सकें।

षष्ठ अध्याय—'अतींद्रिय संवेदना'—संवेदना के परामनोवैज्ञानिक रूप को उजागर करता है। सामान्य रूप से संवेदना के दो रूप परिलक्षित होते हैं—एक वह, जो दृश्य ज्ञानेंद्रियों के रूप में हम अनुभव करते हैं व दूसरा इसका अदृश्य भाग है, जिसे अतींद्रिय संवेदना कहा जाता है। परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी के अनुसार जब मन के दरवाजे भीतर की ओर खुलते हैं तब संवेदनात्मक सूक्ष्मता जन्म लेती है, व्यक्ति में स्थिरता आती है तथा जीवन का अनुभव गहरा, व्यापक, पारदर्शी व अतींद्रिय होकर अध्यात्म की उच्चस्तरीय कक्षा में प्रवेश कर जाता है। यह सामान्य संवेदनाओं के परिष्कार का सहज परिणाम है। महर्षि पतंजलि ने इन संवेदनात्मक यौगिक उपलब्धियों की चर्चा संयमजन्य विभूतियों के रूप में की है।

सप्तम अध्याय—'संवेदना की पराकाष्ठा' में आध्यात्मिक संवेदना को विवेचित किया गया है। आध्यात्मिक संवेदना समस्त संवेदनाओं का शिखर है। आचार्य जी के अनुसार आध्यात्मिक संवेदना के स्तर पर पिंड और ब्रह्मांड में पूर्ण एकत्व, अद्वैत की अवस्था प्राप्त हो जाती है। सृष्टि का मूल प्रयोजन ही संवेदना को निम्न से उच्चतम स्तर तक ले जाकर समग्र बनाना है। आध्यात्मिकता की अनुभूति में संवेदना की पूर्णता प्रकट होती है। इसके अभाव में जीवनचेतना में द्वंद्व और अवरोध बने रहते हैं। आध्यात्मिक संवेदना में ही 'स्व' की संकीर्ण संवेदना परम संवेदना से एकाकार हो उससे तादात्य स्थापित कर पाती है।

दीनो रिपुरप्यनुग्राह्यः।

दीन यदि अपना शत्रु भी हो, तो भी कृपा के योग्य है।

अष्टम अध्याय—'उपसंहार' में उपर्युक्त सभी विचारधाराओं के सार-संक्षेप को प्रस्तुत करते हुए परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी के साहित्य में इनकी स्थिति को स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार आचार्य जी के साहित्य में संवेदना की बहुआयामी अभिव्यक्ति—सृष्टि, जीव जगत, प्राणी जगत, मानव रूप तथा उसके उच्चतर से उच्चतम रूप तक प्रकट हुई है। संवेदना विषय के ऊपर यह शोधग्रंथ न केवल पूज्य गुरुदेव के मौलिक साहित्यिक कला की अभिव्यक्ति है, वरन संवेदना जैसे गूढ़ विषय की अत्यंत व्यापक व समग्र व्याख्या भी है। ❑

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्॥

अर्थात—जो व्यक्ति अपने से बड़ों को रोज प्रणाम एवं उनका नित्य रूप से अभिवादन करता है, उस व्यक्ति की चार चीजों में वृद्धि होती है—आयु, विद्या, यश और बल।

भारतीय संस्कृति में प्रणाम व अभिवादन की परंपरा लंबे समय से रही है। श्रीरामचरितमानस के बालकांड में भगवान श्रीराम की दिनचर्या का उल्लेख है, जिसमें सबसे पहले उनके प्रातःकाल में उठकर अपने से बड़े लोगों एवं गुरुजनों को प्रणाम करने की बात कही गई है—

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा।
मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु मागि करहिं पुर काजा।
देखि चरित हरषइ मन राजा॥

(रा.च.मा., बालकांड 204/4)

अर्थात—श्री रघुनाथ जी प्रातःकाल उठकर माता-पिता और गुरु को मस्तक नवाते हैं और उनकी आज्ञा लेकर नगर का काम करते हैं। उनका चरित्र देख-देखकर राजा मन में बड़े हर्षित होते हैं।

हमारे भारतीय शास्त्रों में प्रणाम करने की परंपरा का उल्लेख वर्षों से मिलता है। प्रणाम के भाव से जब भी कोई व्यक्ति अपने से बड़ों के समक्ष जाता है, तो वह प्रणीत हो जाता है। प्रणाम का सीधा संबंध प्रणीत से है, जिसका अर्थ है—विनीत होना, नम्र होना और किसी के सामने शीश झुकाना। प्रणीत व्यक्ति अपने दोनों हाथ जोड़कर और उन हाथों को अपने वक्षस्थल से लगाकर बड़ों को प्रणाम करता है। कहा जाता है कि प्रणाम करते समय दोनों हाथ की अंजलि, वक्षस्थल से सटी हुई होनी चाहिए। ऐसा करने के पीछे यह कारण बताया जाता है कि प्रतीकस्वरूप हमारा पूरा अस्तित्व सम्माननीय व्यक्ति के सम्मुख समर्पित हो रहा है। वक्षस्थल से हाथ जोड़ने का अर्थ हृदय-के-हृदय से संबंध से है।

भारतीय परंपरा में इसी प्रकार प्रणाम करने की परंपरा रही है। इसके अलावा प्राचीनकाल में गुरुकुलों में दंडवत्-प्रणाम करने का विधान भी रहा है, जिसमें शिष्य—गुरु या अन्य किसी विशेष व्यक्ति के चरणों में साष्टांग लेटकर प्रणाम करते हैं। इस तरह के प्रणाम करने का उद्देश्य यह है कि गुरु के चरणों के अँगूठे से प्रवाहित हो रही ऊर्जा को अपने मस्तिष्क पर धारण किया जाए। ऐसा माना जाता है कि इस ऊर्जा के प्रभाव से शिष्य के जीवन में परिवर्तन होने लगता है।

भारतीय धर्मशास्त्रों में ऐसा करने पर गुरु द्वारा हाथ उठाकर आशीर्वाद देने का भी विधान है। शास्त्रों के अनुसार—जब गुरु हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हैं, तब उनके हाथ की उँगलियों से निकला ऊर्जा का प्रवाह शिष्य के मस्तिष्क में प्रवेश कर जाता है, जो उसके जीवन को प्रभावित करता है। इस आशीर्वाद को ग्रहण करने के लिए शिष्य का भी गुरु को समर्पित होकर प्रणाम करना जरूरी है। स्पष्ट है कि बिना प्रणाम किए इस आशीर्वादरूपी ऊर्जा को ग्रहण कर पाना संभव नहीं है।

जब किसी को प्रणाम किया जाता है तो स्वतः ही उसके अंतःकरण से आशीर्वाद निकलता है। इस आशीर्वाद का हमारे जीवन में बहुत ही महत्त्व है, यह हमारे जीवन को सफल बनाने में व जीवन में महत्त्वपूर्ण बदलाव लाने में सहयोग करता है। आशीर्वाद एक तरह से किसी व्यक्ति के अंतर्मन से निकले हुए शुभ भाव होते हैं, जो व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। यदि आशीर्वाद या आशीर्वचन के साथ व्यक्ति की तपशक्ति, संकल्पशक्ति जुड़ी हुई है तो ऐसे आशीर्वाद शीघ्र फलित होते हैं और प्रत्यक्ष रूप से अपना प्रभाव दिखाते हैं।

आशीर्वाद के चार अक्षर प्रतीक रूप में चार शब्द हैं—आयु, विद्या, यश और बल। जिस शुभकामना से व्यक्ति की आयु, विद्या, यश और बल में वृद्धि होती हो, वही आशीर्वाद है। जिन लोगों को बार-बार आशीर्वाद मिलने पर भी कोई लाभ नहीं मिलता, इसका तात्पर्य है

कि उन्होंने न तो श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया और न ही श्रद्धापूर्वक आशीर्वाद लिया। आशीर्वाद जीवन में तभी उतर सकेगा, जब व्यक्ति आशीर्वाद के प्रभाव को धारण कर पाए। यदि व्यक्ति के अंदर ग्रहणशीलता नहीं है या वह किसी वस्तु को ग्रहण करने से इनकार करता है, तो उसे कुछ भी नहीं दिया जा सकता। इसी तरह यदि कोई आशीर्वाद दे, लेकिन आशीर्वाद लेने वाले व्यक्ति के अंदर अहंकार का भाव हो, विनम्रता न हो, तो ऐसा व्यक्ति आशीर्वाद का लाभ भी नहीं ले पाता।

भारतीय संस्कृति में प्रणाम की परंपरा इसीलिए रखी गई है, ताकि व्यक्ति विनम्र बने न कि अहंकारी। जब व्यक्ति अपने से किसी बड़े व्यक्ति को या महापुरुष स्तर के व्यक्ति को प्रणाम करता है तो प्रणाम करने का भाव ही व्यक्ति की विनम्रता को प्रकट करता है और यही विनम्रता उसे दूसरों से मिलने वाले आशीर्वाद को ग्रहण करने के योग्य बनाती है। हमें भी अपने व्यक्तित्व में निरहंकारिता को विकसित करने के लिए नित्य प्रणाम करने की आदत डालनी चाहिए। ❑

पवहारी बाबा एक महान संत थे। वे गाजीपुर में गंगा जी के पास एक निर्जन स्थान में निवास किया करते थे। स्वामी विवेकानंद अपने भ्रमण के दिनों में उनसे मिले थे और उनके प्रति गहन श्रद्धा भाव रखते थे। बाबा एक बार आधी रात के समय ध्यान कर रहे थे, उसी समय एक चोर उनकी कुटिया में घुसा। धातु के कुछ बरतन, एक कंबल और कुछ कपड़े ही बाबा की कुल जमा-पूँजी थी। चोर ने बरतनों को उठाया और जल्दी-से-जल्दी वहाँ से निकल भागने का प्रयास करने लगा। बाहर निकलने की जल्दबाजी में चोर के हाथ का एक बरतन कुटिया की दीवार से टकरा गया और आवाज सुनकर बाबाजी उठ गए। यह देख वह चोर भयभीत होकर घनी झाड़ियों से होकर भागने लगा। बाबा अपने आसन से उठे। उन्होंने कंबल तथा कुछ वस्त्रों को हाथ में उठाया और चोर के पीछे भागने लगे।

काफी दूर तक पीछा करने के बाद आखिरकार उन्होंने चोर को पकड़ ही लिया। चोर भय से काँप रहा था। मगर न तो उसे मार पड़ी और ना ही उसे पुलिस के हवाले किया गया। उलटे बाबा ही चोर के चरणों में गिर पड़े और हाथ जोड़कर, आँखों में आँसू भरकर बोले—''प्रभु! आप चोर के वेश में मेरी कुटिया में पधारे, पर आपने कुछ चीजें छोड़ दी थीं। कृपया इन्हें भी अपने साथ ले जाएँ।'' चोर भावविभोर हो गया। बाबा के बारंबार आग्रह पर उसे वे वस्तुएँ स्वीकारनी ही पड़ीं, परंतु यह उसके जीवन का एक महत्त्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुआ। संत ने एक अपराधी में भी ईश्वरतत्त्व ही देखा। वह चोर भी संत के व्यवहार से इतना प्रभावित हुआ कि वह साधना में डूब गया और आगे चलकर स्वयं भी एक अच्छे इनसान में बदल गया।

संत कबीर ने ठीक ही कहा है—

कबीर सोई दिन भला, जा दिन साधु मिलाय।

अर्थात जिस दिन सच्चे साधु से मिलन हो जाए, समझो उस दिन ही तुम्हारा भला अर्थात कल्याण होना प्रारंभ हो गया।

शक्ति संरक्षण वर्ष

प्रकृति को हरी चादर ओढ़ाने का मौसम
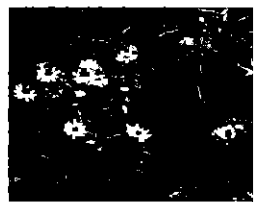
सावन का मौसम बारिश का मौसम होता है, जिसमें संपूर्ण प्रकृति बारिश की फुहारों से स्नान करती है। संपूर्ण प्रकृति में एक अद्भुत संगीत गूँज उठता है, बादलों की गड़गड़ाहट, बिजली की चमक, बारिश का कभी धीमा तो कभी तेज स्वर, पत्तों व भूमि पर बारिश की पड़ती हुई बूँदें जैसे कुछ कहती हैं। भूमि पर जब बारिश की बूँदें पड़ती हैं, तो चहुँओर मिट्टी की सौंधी खुशबू फैल जाती है।

सावन के महीने में भीगा हुआ मौसम ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति अभी भी अपने स्नान से संतुष्ट नहीं हुई हो। सावन के महीने में जब यदा-कदा सूर्य की किरणें निकलती हैं तो वे और भी मनोरम लगती हैं। उस समय चारों ओर का वातावरण ऐसा दिखता है, मानो प्रकृति ने नया श्रृंगार कर लिया हो, हरीतिमास्वरूप नया परिधान धारण कर लिया हो। सावन के महीने में धरती की उर्वरा शक्ति आश्चर्यजनक ढंग से बढ़ जाती है। चारों ओर हरियाली की चादर जैसी फैल जाती है। इस मौसम में पेड़-पौधे, दिन-दूनी, रात-चौगुनी वृद्धि करते हैं। इसलिए हमारे पूर्वजों ने इस मौसम में प्रकृति संरक्षण की अनूठी परंपराओं का बीजारोपण किया है। ये परंपराएँ देश के भिन्न-भिन्न राज्यों में अलग-अलग हैं और हर क्षेत्र में अपना एक विशेष महत्त्व रखती हैं।

उदाहरण के लिए जम्मू-कश्मीर में सावन के महीने में पवित्र देविका नदी के किनारे 'रूटट रहाड़े' पर्व का आयोजन किया जाता है। इसके अंतर्गत शादी-शुदा बेटियाँ अपने मायके जाकर पिता, भाई, ताऊ, चाचा आदि के नाम के पौधे रोपती हैं और ये लोग उन पौधों के संरक्षण का जिम्मा उठाते हैं। पहले यहाँ पर सावन का मौसम आने के पहले तालाबों व पोखरों की साफ-सफाई और उन्हें गहरा करने व पानी को सहेजने के लिए तालाबों के आस-पास बाँस बोने की परंपरा थी, जो अब विकास के नाम पर कम होती जा रही है।

पंजाब प्रांत में वन संपदा संरक्षण के लिए किसी देवी-देवता के नाम पर 'रक्ख' अर्थात संरक्षित वनक्षेत्र छोड़ दिया जाता था। वहाँ शिकार करना और लकड़ी काटना पूर्णतया वर्जित था, लेकिन अब यह परंपरा सुदूर क्षेत्रों तक ही सिमटकर रह गई है। कपूरथला के सीसेवाल में कालीबेई नदी (जिसके किनारे गुरुनानक देव जी को दिव्य ज्ञान प्राप्त हुआ था) पर आने वाले दर्शनार्थियों को पहले प्रसाद के रूप में एक पौधा दिया जाता था। इस क्षेत्र में त्रिवेणी रोपण की भी पावन परंपरा थी, जिसके तहत नीम, पीपल और बरगद का रोपण सावन माह में किया जाता था, लेकिन समय के साथ ये परंपराएँ अंशमात्र ही बची हुई हैं।

बिहार क्षेत्र में सावन के शुरू होते ही जगह-जगह हरियाली की पुजाई का आयोजन होने लगता है। यहाँ पूरे सावन माह में नीम और पीपल के पेड़ में पानी डालने की परंपरा है। पूरे सावन के महीने में इन वृक्षों की डाल को तोड़ना वर्जित माना जाता है। इस दौरान घर-घर तुलसी के पौधे रोपे जाते हैं। यही नहीं, यहाँ के भागलपुर जिले के धरहरा गाँव में बेटी के जन्म पर पौधे रोपने की पावन परंपरा का अभी भी निर्वहन किया जा रहा है।

उत्तर प्रदेश में भी सावन माह में पर्यावरण संरक्षण की कई परंपराएँ हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के कई इलाकों में यहाँ बाग-बगीचों की शादी का रिवाज है। वृक्ष लगाने वाला व्यक्ति अपनी पत्नी के साथ लगाए हुए पौधे के सात फेरे लेता है और उसके संरक्षण-संवर्द्धन का दायित्व अपने ऊपर लेता है। इस अवसर पर आयोजित भोज में उस वृक्ष का फल, मुख्य व्यंजन के रूप में परोसा जाता है। इस मौसम में हरियाली तीज का पर्व भी बहुत धूम-धाम से मनाया जाता है। शिव-पार्वती के विवाहोत्सव के रूप में मनाया जाने वाला यह पर्व पर्यावरण-संरक्षण का महत्त्वपूर्ण संदेश देता है।

झारखंड में सावन के महीने में कई तरह की धार्मिक पूजा करने व कर्मकांड का प्रचलन है। यहाँ के निवासियों की यह मान्यता है कि यह भगवान शिव की भूमि है। यहाँ की मुंड, सदान आदि जनजातियों में इस महीने

पहाड़ पूजन की भी परंपरा है। इसके पीछे इनका तर्क यह है कि पहाड़ और वन हरे-भरे रहेंगे तो अच्छी बारिश होगी और फसलों की अच्छी पैदावार होने से घर-परिवार में खुशहाली रहेगी।

सावन मास में उत्तराखंड के विभिन्न क्षेत्रों में 'हरेला पर्व' मनाया जाता है। भगवान शिव व पार्वती के विवाह के उपलक्ष्य में वर्षा ऋतु से 10-15 दिन पहले हरेला बोने की यहाँ परंपरा है। धन-धान्य की प्राप्ति हेतु मनाए जाने वाले इस त्योहार में सात तरह के अनाज का रोपण होता है। घर का मुखिया साफ स्थान से मिट्टी लाकर मिट्टी के पात्र में इन्हें बोता है और पूजन स्थल पर इस पात्र को रखकर सुबह-शाम इसके समक्ष दिया जलाया जाता है और जल से सींचा जाता है। इस मौके पर शिव-पार्वती की पूजा भी की जाती है। इस पर्व को मनाने के पीछे आशय यह है कि क्षेत्र में हरियाली का वास हो, फसलें फलती रहें और मानव जीवन में उल्लास बना रहे।

सावन मास में मनाए जाने वाले पर्व रक्षाबंधन के कर्मकांड में युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने वृक्षारोपण को एक अभिन्न कर्मकांड के रूप में शामिल किया है। श्रावणी पर्व के इस कर्मकांड में—पर्व पूजन क्रम, हेमाद्रि संकल्प, दसस्नान, शिखा सिंचन, यज्ञोपवीत नवीनीकरण, विशेष पूजन के अंतर्गत—ब्रह्मावाहन, वेदावाहन, ऋषि आवाहन, तदुपरांत रक्षाबंधन, फिर वृक्षारोपण और संकल्प लेने के साथ कर्मकांड का समापन किया जाता है। सावन महीने में अखिल विश्व गायत्री परिवार द्वारा जगह-जगह वृक्षारोपण अभियान चलाया जाता है, हरीतिमा संवर्द्धन हेतु सामूहिक रूप से मिल-जुलकर प्रयास किए जाते हैं और इस तरह के प्रयासों को प्रोत्साहन देने हेतु इनका प्रचार-प्रसार किया जाता है। इस तरह सावन का महीना देश भर में हरियाली बढ़ाने का सबसे अच्छा समय है। बस, जरूरत है तो हरीतिमा संवर्द्धन से संबंधित अनूठी परंपराओं को जीवंत रखने की और इस दिशा में अपनी पहल करने की। ❑

देशप्रेम की चिनगारी दावानल बनकर संपूर्ण भारत में फैलती जा रही थी। कानपुर, इस क्रांति का केंद्र था। इसी चिनगारी ने एक गणिका के अंतःकरण को भी झकझोरा। उसने सोचा कि इस हाट पर बैठकर रोज-रोज मरने से अच्छा है कि एक ही बार में देश के लिए मर जाऊँ। उसने स्त्रियों का एक दल संगठित किया और यह दल घर-घर जाकर लोगों को क्रांति का संदेश देने लगा। क्रांतिकारियों की सेवा-सहायता का जिम्मा भी उन्होंने अपने ऊपर ले लिया। अँगरेजों को उसके इस प्रयास का पता चला तो उन्होंने उसे बंदी बना लिया।

जब उसे पकड़कर अँगरेज कप्तान हेवलॉक के सम्मुख ले जाया गया तो उसे विश्वास ही नहीं हुआ कि इस महिला के कारण इतना बड़ा दल तैयार हो खड़ा हुआ है। उसने उससे कहा—"तुम यदि अपने अपराधों के लिए क्षमा माँग लो तो तुम्हें माफ किया जा सकता है। फिर तुम्हें मृत्युदंड नहीं मिलेगा।" वह गणिका बोली—"मरने के लिए ही तो मैंने देशप्रेम का पथ चुना है। मुझे उसका भय नहीं है। जब मैं घृणित व्यवसाय करती थी, तब रोज स्वयं को मरा हुआ महसूस करती थी। अब पहली बार जीना सीखी हूँ।" अँगरेज कप्तान ने उसको फाँसी की सजा का फरमान सुनाया, परंतु उसने हँसते-हँसते मरना स्वीकार किया। जीवन को उद्देश्य मिल जाए, तो जीवन सफल हो जाता है।

निष्काम कर्म की होती है उत्तम परिणति

(श्रीमद्भगवद्गीता के गुणत्रयविभाग योग नामक चतुर्दश अध्याय की नौवीं किस्त)

[इससे पूर्व की किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के चतुर्दश अध्याय के पंद्रहवें एवं सोलहवें श्लोकों की विवेचना प्रस्तुत की गई थी। इसमें से पहले, अर्थात पंद्रहवें श्लोक में श्रीभगवान कहते हैं कि रजोगुण के बढ़ने पर मरने वाला प्राणी कर्मसंगी मनुष्य योनि में जन्म लेता है तथा तमोगुण की वृद्धि पर मरने वाला प्राणी मूढ़ योनियों में जन्म का अधिकारी बनता है। कर्मसंगी अर्थात जिसे नवीन कार्य करने का अधिकार हो और ये अधिकार मात्र मनुष्य को प्राप्त है; क्योंकि मनुष्येतर योनियाँ, भोगों के लिए मिलती हैं, कर्म करने के लिए नहीं। जिसके मन में, शरीर छूटते समय भी नए कर्म करने की योजना बन रही होती है, वह फिर इसी दौड़ को मन में लिए पुनः जन्म लेता है। अनेक लोग इसी तरह की आसक्तियों के पीछे भागने में, जीवन को बरबाद कर देते हैं। कोई पद तो कोई प्रतिष्ठा तो कोई पैसे के लिए दौड़ता नजर आता है। शरीर छूटने पर भी ये आसक्तियाँ मनुष्य का साथ नहीं छोड़तीं। इनका अंत तो मात्र तब होता है, जब मनुष्य को ज्ञान एवं बोध होता है। जो प्रकाश की कक्षा में चला जाता है, उसे इस दौड़ की व्यर्थता समझ में आ जाती है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि इसी प्रकार तमोगुण से भरा हुआ व्यक्ति, उन योनियों को प्राप्त होता है, जहाँ बोध की संभावना नहीं है, और ऐसा होना पशु योनि में भी संभव है और मनुष्य योनि में भी। इन दोनों संभावनाओं को बदलने के लिए अपने जीवन के दृष्टिकोण को बदलना जरूरी होता है। उसे बदले बिना इस चक्र से निकल पाना संभव नहीं होता।

इससे अगले श्लोक में श्रीभगवान कहते हैं कि विवेकी पुरुषों ने शुभकर्म का तो सात्त्विक निर्मल फल कहा है, राजसी कर्म का फल दुःख कहा है और तामसिक कर्म का फल अज्ञान कहा है। इस कथन का अर्थ मात्र इतना है कि कर्म सात्त्विक, राजसिक या तामसिक नहीं होते, वरन उनका कर्त्ता ही सात्त्विक, राजसिक या तामसिक होता है। जैसा कर्त्ता होता है, जैसे उसके गुण होते हैं, उसके द्वारा वैसे ही कर्म संपन्न होते हैं और जैसे कर्म संपन्न होते हैं, वैसा ही उनका भाव बनता है और उन भावों के अनुसार ही अंतकालीन चिंतन होता है और उस अंतकालीन चिंतन के अनुसार ही मनुष्य की गति होती है। समय रहते बोध को, प्रकाश को उपलब्ध होने वाले ही इस अज्ञान व अंधकार की गिरफ्त से छूट पाते हैं—यही सार्वभौम सत्य है।]

इतना कहने के उपरांत भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—

सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च॥ *17*॥

शब्द विग्रह—सत्त्वात्, सञ्जायते, ज्ञानम्, रजसः, लोभः, एव, च, प्रमादमोहौ, तमसः, भवतः, अज्ञानम्, एव, च ॥

शब्दार्थ—सत्त्वगुण से (**सत्त्वात्**), ज्ञान (**ज्ञानम्**), उत्पन्न होता है (**सञ्जायते**), और (**च**), रजोगुण से (**रजसः**), निस्संदेह (**एव**), लोभ (**लोभः**), तथा (**च**), तमोगुण से (**तमसः**), प्रमाद और मोह (**प्रमादमोहौ**), उत्पन्न होते हैं और (**भवतः**), अज्ञान (**अज्ञानम्**), भी होता है (**एव**)।

अर्थात सत्त्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगुण से लोभ उत्पन्न होता है तथा तमोगुण से प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं, साथ ही अज्ञान भी होता है। श्रीभगवान कहते हैं कि सात्त्विक कार्य, चित्त के निर्मल होने से व व्यक्तित्व के प्रकाशित होने से ही संभव हो पाते हैं और स्वाभाविक है कि ऐसे कर्म के फल सुख, ज्ञान व प्रकाश ही होंगे। जो कर्म निरासक्ति के भाव से उत्पन्न होता है, जहाँ पर कर्त्तापन का अधिकार, 'मैं' भाव का पागलपन इत्यादि शेष नहीं रह जाते, वहीं पर सात्त्विक कर्म के हो पाने की संभावना होती है। अहंकार से लिप्त कर्म सात्त्विक नहीं रह जाता, वरन निरासक्ति, करुणा व निरहंकारिता से उत्प्रेरित कर्म सात्त्विक कहलाता है।

इसे ऐसे समझें कि जैसे फूल है, वो यह सोचकर नहीं खिलता कि कोई मेरी प्रशंसा करेगा या नहीं, वायु यह सोचकर नहीं बहती कि कोई मेरे साथ चलेगा या नहीं, पर्वत यह सोचकर नहीं बढ़ता कि कोई मेरे आगे झुकेगा या नहीं? उनका होना ही, उनके अस्तित्व का प्रमाण है। एक फूल चाहे निर्जन घाटियों में उगे या किसी सुंदर उपवन में, उसकी सुंदरता समान रहती है। सात्त्विक कर्म भी एक ऐसा ही कर्म है, जो अहंकार की पुष्टि के लिए नहीं होता, बल्कि वह सभी अवस्थाओं में समान ही रहता है। सात्त्विक कर्म का आधार ही निरहंकारिता है। जहाँ अहंकार शून्य हो जाए, वहाँ पर हुआ कर्म सात्त्विक कर्म है। जो पहले ही करने के अहंकार से भरे हुए हैं, वे निर्मल व पवित्र कर्म नहीं कर पाते हैं।

इस संदर्भ में एक प्यारी झेन कथा है। जापान में एक प्रसिद्ध संत रहा करते थे। जापान के राजा ने अपने महामंत्री को उनके पास कुछ सीखने के लिए भेजा। महामंत्री स्वअर्जित जानकारियों से भरे ज्ञान के अहंकार से ग्रस्त थे। वे जब संत के पास मिलने के लिए पहुँचे तो उन्होंने एक लंबा समय मात्र अपनी उपलब्धियों को गिनाने में लगाया। संत ने उनसे पूछा—''राजा ने उनको, उनके पास क्यों भेजा है?'' महामंत्री ने उत्तर दिया—''कुछ सीखने के लिए।'' इतना कहने के बाद महामंत्री बोले—''वैसे तो मैं सभी कुछ जानता हूँ, फिर भी राजा का आदेश था तो आना पड़ा।''

महामंत्री का उत्तर सुनकर संत मुस्कराए और बोले—''यदि ऐसी बात है तो चाय ग्रहण कर लें, ताकि बाद में कुछ ज्ञान की बातें हो सकें।'' ऐसा कहते हुए उन्होंने एक चाय से भरा हुआ प्याला लिया और उसमें और चाय डालना शुरू किया। स्वाभाविक था कि चाय प्याले से बाहर निकल कर फैलती।

महामंत्री ने संत को टोका और बोले—''ये आप क्या कर रहे हैं? राजा ने तो कहा था कि आप ज्ञानी व्यक्ति हैं, फिर एक भरे हुए प्याले में और चाय डालने का प्रयत्न क्यों कर रहे हैं? यह चाय तो बाहर फैल जाएगी।'' संत बोले—''महामंत्री यही कार्य तो आप भी कर रहे हैं। आप पहले ही अपने ज्ञान के अहंकार से भरे हुए हैं कि उसमें कुछ नया समाहित होने की संभावना ही खतम हो गई है। यदि ज्ञान प्राप्त करना है तो अहंकारशून्य होना जरूरी है।''

स्पष्ट है कि जहाँ कर्म पर अहंकार का बोझ नहीं है, वह कर्म सात्त्विक ही होगा और सात्त्विक कर्म सुख, ज्ञान और प्रकाश ही दे सकता है। इसी प्रकार राजसिक कर्म, मात्र लोभ को जन्म देता है; क्योंकि वहाँ कर्म को करने की प्रेरणा, अहंकार से उपज रही है। जहाँ अहंकार है, वहाँ महत्त्वाकांक्षाएँ हैं; जहाँ महत्त्वाकांक्षाएँ हैं, वहाँ अधिक की चाहत है और जहाँ अधिक की चाहत है, वहाँ राजसिक कर्म है। ऐसा कर्म, कभी किसी को तुष्ट नहीं कर पाता है।

सिकंदर के जीवन की भी कुछ ऐसी ही घटना है। जब वह भारत की सीमा से परास्त होकर और अपनी आधी से ज्यादा सेना को गँवाकर वापस लौट रहा था, तब उसकी स्थिति अत्यंत दयनीय हो गई थी। कई दिनों तक सैनिकों को भोजन नहीं मिलता था। भूखे-प्यासे कई सैनिक मृत्यु का शिकार हो रहे थे। एक दिन मार्ग में उसे एक वृद्ध महिला का निवास मिला। सिकंदर के सैनिकों ने उस वृद्धा से भोजन की माँग की। उनकी स्थिति देखकर उसको उन पर दया आ गई और उसने उनके लिए भोजन तैयार कर दिया।

भोजन परोसते समय जब उसे पता चला कि उनमें से बीच में बैठा हुआ व्यक्ति सिकंदर है तो उसने उसकी थाली में से रोटियाँ हटाकर वहाँ पर कुछ सिक्के डाल दिए। सिकंदर ने वृद्धा से प्रश्न किया—''माँ! मुझे रोटियाँ क्यों नहीं दीं? मैं भी तो भूखा हूँ।'' वह महिला बोली—''बेटा! यदि रोटियों से तेरा पेट भर जाता तो पैसों के इन टुकड़ों के लिए इतना मारा-मारा क्यों घूमता?'' यह जो दौड़ है, यह कभी किसी को तुष्टि नहीं दे पाती। मनुष्य अपने अहंकार की पूर्ति के लिए मारा-मारा घूमता है, परंतु अंत में जाता खाली हाथ ही है।

श्रीभगवान कहते हैं कि जहाँ अहंकारशून्यता है, उस निरहंकारी चित्त से जन्मा कर्म, सात्त्विक कर्म है और यह सात्त्विक कर्म—सुख, ज्ञान व प्रकाश को जन्म देता है। वे कहते हैं कि अहंकार से जन्मा कर्म, राजसिक कर्म है और ऐसा कर्म लोभ को जन्म देता है तो उसी क्रम में अज्ञान से जन्मा कर्म, तामसिक कर्म है और ऐसा कर्म प्रमाद व मोह को जन्म देता है।

इसके आगे श्रीभगवान कहते हैं—

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥18॥

शब्द विग्रह—ऊर्ध्वम्, गच्छन्ति, सत्त्वस्थाः, मध्ये, तिष्ठन्ति, राजसाः, जघन्यगुणवृत्तिस्थाः, अधः, गच्छन्ति, तामसाः।

शब्दार्थ—सत्त्वगुण में स्थित पुरुष (**सत्त्वस्थाः**), स्वर्गादि उच्च लोकों को (**ऊर्ध्वम्**), जाते हैं, (रजोगुण में स्थित) (**गच्छन्ति**), राजस पुरुष (**राजसाः**), मध्य में अर्थात मनुष्य लोक में (ही) (**मध्ये**), रहते हैं (और) (**तिष्ठन्ति**), तमोगुण के कार्यरूप (**जघन्यगुण**), निद्रा, प्रमाद और आलस्यादि में स्थित (**वृत्तिस्थाः**), तामस पुरुष (**तामसाः**), अधोगति को अर्थात कीट, पशु आदि नीच योनियों को तथा नरकों को (**अधः**), प्राप्त होते हैं (**गच्छन्ति**)।

अर्थात सत्त्वगुण में स्थित पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकों को जाते हैं, रजोगुण में स्थित राजस पुरुष मध्य में अर्थात मनुष्य लोक में ही रहते हैं और तमोगुण के कार्यरूप निद्रा, प्रमाद और आलस्यादि में स्थित तामस पुरुष अधोगति को अर्थात कीट, पशु आदि नीच योनियों को तथा नरकों को प्राप्त होते हैं। ये तीन स्थितियाँ मन की, चित्त की हैं। स्वर्ग व नरक कोई भौगोलिक स्थान नहीं हैं, बल्कि मनुष्य के अंतःकरण की दशाएँ हैं। इसलिए पहले इन्हें ही समझ लेना जरूरी है।

शांतिकुंज में प्रवेश करते ही परमपूज्य गुरुदेव द्वारा दिया गया उद्घोष पढ़ने को मिलता है—**मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण**। पूज्य गुरुदेव ने व्याख्या की है कि देवत्व का अर्थ देने के भाव से आता है। जो देना जानता है, देने का अधिकार रखता है और देने का भाव रखता है—वह देवता कहलाता है। जो मात्र माँगना जानता है और दूसरों से छीनने का भाव रखता है—वह देवता नहीं कहला सकता है। देवता कहलाने के लिए भावनाओं की समृद्धता और अंतःकरण की उदारता प्रमुख और मूल शर्त है। जिसे यह समझ में आ जाता है कि जितना मुझे मिला है, उतना मैं बाँटना शुरू कर दूँ—वह सच्चे अर्थों में देवत्व का अधिकारी बन जाता है।

इस संदर्भ में एक प्रेरक उद्धरण आता है। एक बार देवर्षि नारद, प्रजापति ब्रह्मा के पास अपनी एक जिज्ञासा ले करके पहुँचे। वे बोले—"प्रजापति! आप न्यायप्रिय हैं, सबके प्रति समान दृष्टि रखते हैं, फिर आपकी सृष्टि में यह भेदभाव क्यों है? देवताओं को आपने अनेक सुविधाएँ दे रखी हैं—यज्ञ का भाग उन्हें मिलता है, वे स्वर्ग के निवासी हैं, कामधेनु गौ से लेकर अमृत का अधिकार उनको है; जबकि असुर नरक में अपना जीवन व्यतीत करते हैं, अनेक यंत्रणाओं को उन्हें भोगना पड़ता है। ऐसा क्यों? ये दोनों ही आपकी संतान हैं, फिर एक को अच्छा और दूसरे को बुरा क्यों?"

प्रजापति ने उत्तर दिया—"देवर्षि! देवता होना या असुर होना, मनःस्थिति के आधार पर तय होता है, वंश के आधार पर नहीं। यदि वंश के आधार पर कोई देवता बनता तो बलि, प्रह्लाद या विरोचन देवता क्यों कहलाते? इनमें से सभी असुरों के वंश में जन्मे थे; जबकि रावण, सप्त ऋषियों के वंश में जन्म लेने के बाद भी राक्षस ही कहलाया। यह जो निर्धारण है, वो उनके अंतःकरण की उदारता के आधार पर है। जिसके अंतःकरण में उदारता है, वो देवता है और जिसके अंतःकरण में संकीर्णता है, वो असुर है। यदि अभी भी आपकी जिज्ञासा का समाधान न हुआ हो तो एक प्रयोग करके देख लेते हैं। आप सायंकाल सभी प्राणियों को हमारे पास भोजन के लिए आमंत्रित करें। सबसे पहले असुरों को बुलाएँ। वहीं पर सबकी परीक्षा हो जाएगी।"

प्रजापति के आदेशानुसार, निमंत्रण भिजवा दिया गया। सबसे पहले असुर भोजन के लिए उपस्थित हुए। भोजन जैसे ही लगाया गया, वैसे ही प्रजापति ने आकर अपनी शर्त बताई। वे बोले—"भोजन सबको मिलेगा, परंतु एक शर्त है। इस भोजन को बिना कोहनी मोड़े ग्रहण करना है।" असुरों ने उस आधार पर भोजन ग्रहण करने का प्रयत्न किया। स्वाभाविक था कि भोजन फैलता। उनमें से कोई भी भोजन ग्रहण न कर पाया और सारा भोजन यों ही बरबाद हो गया। सारे असुर प्रजापति को कोसते हुए उठे कि भोजन नहीं देना था तो बुलाया क्यों? ऐसी शर्त बता दी, जिसका पूरा हो पाना संभव नहीं। बिना कोहनी मोड़े कोई भोजन कैसे कर सकता है?

इसके बाद देवताओं की बारी आई। उनके लिए भी भोजन लगा दिया गया। जैसे ही वे भोजन ग्रहण करने को तत्पर हुए, वैसे ही प्रजापति ने उपस्थित होकर अपनी शर्त रख दी। जैसे ही शर्त देवताओं को बताई गई, वे उस शर्त का मूल उद्देश्य समझ गए। देवता समझ गए कि प्रजापति का इशारा यह है कि हर प्राणी अपनी रोटी को मिल-बाँट करके खाए। सारे एकदूसरे के बगल में बैठ गए। प्रत्येक ने अपनी कोहनी को मोड़े बगैर अपने से निकट बैठे देवता के मुँह में भोजन डाल दिया। इस प्रकार हरेक का पेट भर गया और सभी संतुष्ट होकर उठे। यह देखकर देवर्षि नारद की जिज्ञासा का समाधान हो गया और वे समझ गए कि देवता वो होते हैं, जो बाँटना जानते हैं।

इसी प्रकार यहाँ श्रीभगवान अर्जुन को इशारा करते हैं कि जो अंत:करण की दृष्टि से उदार हैं, शुभकर्म करते हैं, सात्त्विक आचरण में विश्वास रखते हैं, वे स्वर्ग आदि उच्च लोकों में देवताओं की भाँति निवास के अधिकारी बनते हैं। राजसिक कर्म करने वाले यहीं, इसी लोक में बारंबार जन्म लेते हैं; क्योंकि उनके मन की महत्त्वाकांक्षाएँ उन्हें यहीं दौड़ाती रहती हैं। इसी क्रम में तामसिक कर्म करने वाले, अंत:करण में संकीर्णता, क्षुद्रता व निकृष्टता रखने वाले—अधम व निकृष्ट योनियों में क्षुद्र प्राणियों के रूप में जन्म लेते हैं। स्पष्ट है कि इन योनियों की प्राप्ति उन कर्मों के आधार पर होती है, जिन्हें हम वर्तमान यानी मनुष्य योनि में करते हैं। आज किए गए कर्म ही कल मिलने वाले जन्म की व्यवस्था बना रहे होते हैं। ❑

एक पंडित जी थे, उनका नाम था—सज्जन प्रसाद। वे सज्जन और सदाचारी थे, ईश्वरभक्त भी थे, किंतु धर्म का कोई वैज्ञानिक स्वरूप भी है, ऐसा वे नहीं जानते थे। प्रतिदिन अपनी पूजा समाप्त करने के बाद वे जोर से शंख बजाते। उसकी आवाज सुनकर पड़ोस का गधा किसी गोत्रबंधु की आवाज समझकर रेंकने लगता। उसकी आवाज सुन कर पंडित जी प्रसन्न होते, यह सोचते कि जरूर यह गधा कोई पूर्वजन्म का भक्त रहा होगा, तभी मेरा साथ देता है। एक दिन गधा नहीं चिल्लाया तो पंडित जी ने पता लगाया। मालूम हुआ कि गधा मर गया है।

गधे के सम्मान में पंडित जी ने तर्पण करा और विधिवत् मुंडन भी किया। शाम को वे दुकान पर गए तो दुकानदार ने पूछा—''पंडित जी! यह मुंडन कैसा ? क्या किसी का देहांत हो गया है ?'' पंडित जी दु:खी होकर बोले—''क्या बताऊँ! आज शंखराज नहीं रहे।'' यह सुनकर दुकानदार भी बड़ा दु:खी हुआ। उसे लगा कि जरूर किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति का देहांत हो गया है। उसने भी मुंडन करा लिया। थोड़ी देर में एक सिपाही उसकी दुकान पर आया। उसने दुकानदार से पूछा तो दुकानदार ने भी उसको वही उत्तर दिया। यह सुनकर सिपाही ने भी सिर मुँडवा लिया। देखते-देखते समाचार पूरे नगर में फैल गया। अनेकों ने सिर मुँडवा लिए। राजा को पता चला तो उसने घटना की तह में जाने का निर्णय किया। जब सबसे पूछते-पूछते पंडित जी से पूछा गया कि शंखराज कौन था, तो उन्होंने बताया कि शंखराज पड़ोसी का गधा था। अब सबके चेहरे शरम से झुक गए। राजा बोले—''समाज में अंधविश्वास इसी प्रकार फैलते हैं। धर्म, सत्य की प्रतिष्ठा के लिए है—परंपराएँ निभाने के लिए नहीं।'' बिना सत्य जाने कोई कार्य नहीं करना चाहिए।

चित्तशुद्धि के विविध उपाय

एक शावक बचपन में ही अपने माता-पिता से बिछुड़ गया। वह वन में इधर-उधर भटकता रहा और फिर वन के अन्य जीवों के साथ रहने लगा। एक दिन उस वन में कहीं से भेड़ों का एक झुंड आया। शावक को अकेला देख एक बड़ी भेड़ ने उसे अपने झुंड में शामिल कर लिया। शावक भेड़ों के साथ रहते-रहते भेड़ों की तरह व्यवहार करने लगा। समय के साथ-साथ शावक बड़ा हो चला। शावक शेर बन गया, पर प्रकृति से नहीं, सिर्फ आकृति से; अंदर से नहीं, सिर्फ बाहर से; क्योंकि उसका चाल-चरित्र सब कुछ भेड़ों जैसा ही था।

एक दिन अचानक उस वन में एक वयस्क शेर आया और उसका सामना उन भेड़ों से हुआ, जिनके झुंड में शेर भी रहा करता था। शेर को देखते ही सारी भेड़ें भागने लगीं, उनको भागते देख वह शेर भी भागने लगा। बड़े शेर ने उन सबका पीछा किया और उसने भेड़ों के साथ दौड़ लगाते शेर को पकड़ लिया और उससे कहा—''मित्र! मुझसे वन के सारे जीव भय खाते हैं, कोई भी मेरा सामना नहीं कर सकता। मैं ही इस वन का राजा हूँ; क्योंकि मैं सबसे शक्तिशाली हूँ। पर मुझे देखकर भला तुम क्यों भागे जा रहे हो, तुम क्यों भयभीत हो रहे हो? तुम तो स्वयं ही शेर हो, फिर मुझसे भयभीत होने और भेड़ों के साथ, भेड़ों की तरह जीवन जीने की तुम्हें क्या आवश्यकता है?''

उस शेर को आज पहली बार किसी ने शेर कहा था, इसलिए वह बड़े आश्चर्य में पड़ा। उसने दूसरे शेर से कहा—''मैं तो भेड़ हूँ, फिर आप मुझे शेर क्यों कह रहे हैं?'' यह सुनकर बड़े शेर को हँसी आ गई। वह समझ गया कि भेड़ों के बीच रहने के कारण ही यह शेर होते हुए भी स्वयं को भेड़ समझ रहा है। इसे अपनी असलियत का पता नहीं। वह उसे एक नदी किनारे ले गया और उस जल में अपनी परछाई देखने को कहा। अपनी परछाई देखकर वह अचरज में पड़ा; क्योंकि वह बड़े शेर जैसा ही था। तब बड़ा शेर बोला—''तुम अपने असली रूप को देखो और बताओ कि तुम मेरे जैसे दिखते हो या नहीं?''

उत्तर में उस शेर ने कहा—''हाँ! सचमुच मैं आप जैसा ही दिखता हूँ।'' तब उस बड़े शेर ने फिर कहा—''अब तुम मेरी तरह गर्जना करो।'' उस शेर ने तब पहली बार शेर की तरह घोर गर्जना की। उसके गर्जन से सभी वन्यजीव भयभीत होकर भाग निकले। उस शेर को उस दिन पहली बार एहसास हुआ कि वह भेड़ नहीं, बल्कि शेर है और तभी से उसका जीवन बदल गया।

सभी जीवों में श्रेष्ठ, ईश्वर का राजकुमार, मनुष्य भी अपने अलख निरंजन, सत्-चित्-आनंदस्वरूप को भूलकर स्वयं को हमेशा याचक ही समझता है, दीन-हीन व दुर्बल ही मानता है; जबकि ईश्वर का अंश होने के कारण वह तो अजर-अमर-अविनाशी है। उसकी आत्मा नित्य, सनातन और पुरातन है। वह तो चेतन-अमल व सुख की राशि है, परंतु इसका उसे भान तक नहीं। ईश्वर अंश होने के कारण उसमें भी ब्रह्मस्वरूप हो जाने की क्षमता है, सामर्थ्य है। इस कायनात के मालिक का वही तो सच्चा वारिस है, वही तो सही उत्तराधिकारी है। वही तो अमृत व आनंद का अधिकारी है, पर इसकी उसे सुध ही कहाँ है?

ऐसा इसलिए, क्योंकि वह इन सबसे अनजान व अनभिज्ञ जो है। वह अब भी दाता नहीं, याचक बना बैठा है। जो स्वयं अपने मुक्तहस्त से पूरे जगत को अमृत व आनंद लुटा सकता है, वह स्वयं ही वासना, तृष्णा व कामना का भिक्षा-पात्र लिए औरों के समक्ष याचना करने में लगा है। वह कभी वासना की याचना करता है तो कभी कामना की, कभी लोभ में गिरता व गिड़गिड़ाता है, कभी क्रोध में फुफकारता है तो कभी मोह में अपने कर्त्तव्य की अवहेलना तक कर बैठता है। जिसका इस लोक ही नहीं, ब्रह्मलोक तक पर अधिकार है, उस मनुष्य का ऐसा दीन-हीन व याचक रूप सचमुच कितना लज्जाजनक और निंदनीय है।

इसी प्रकार हमें गुरु व ईश्वर की शरण में रहकर सिंह के समान घोर गर्जना भर करनी है। हमें याचना

नहीं, उपासना करनी है व अपने वास्तविक स्वरूप, अलख निरंजन रूप को प्राप्त करना है। हम अपने वास्तविक सच्चिदानंद रूप को भूल कर बैठे हैं; क्योंकि कई जन्मों से अपने चित्त में चल रहे चलचित्र को देख-देखकर उसे ही अपना वास्तविक स्वरूप हम मान बैठे हैं।

चित्त में रह-रहकर उठने वाली विभिन्न जन्मों के कर्म-संस्कारों की लहरें व वृत्तियाँ हमें हमारे वास्तविक स्वरूप का भान तक नहीं होने देतीं, हमें हमारे ब्रह्मरूप का दर्शन, दीदार भी नहीं होने देतीं। चित्त में चल रहा यह चलचित्र इस जीवन से ही नहीं, पिछले कई जन्मों से यों ही चलता आ रहा है। इसलिए तो हम अब तक अमृत, आनंद व मोक्ष से वंचित रहे; क्योंकि हम कर्मों के बंधन में, जीवन-मरण के बंधन में ही बँधे रहे। अस्तु जब तक चित्त में चल रहा चलचित्र समाप्त नहीं हो जाता, चित्त की वृत्तियों का निरोध नहीं हो जाता, तब तक द्रष्टा अपने चित्त की वृत्ति को ही अपना वास्तविक रूप समझने की भूल यों ही करता रहेगा और मोक्ष, मुक्ति व ब्रह्मपद का अधिकारी होते हुए भी याचना करता रहेगा, कर्मबंधनों में बँधा यों ही तड़पता, फड़फड़ाता रहेगा।

ऐसे में चित्त में चल रहे इस चलचित्र का समापन हो भी तो कैसे हो, चित्तवृत्तियों का निरोध कैसे हो? महर्षि पतंजलि अपने योगसूत्र में चित्तवृत्तिनिरोध के बड़े सहज व सरल उपायों की व्याख्या कुछ इस प्रकार करते हैं—

अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः॥ *1/12*

अर्थात—चित्त की वृत्तियों का सर्वथा निरोध, अभ्यास एवं वैराग्य से होता है।

चित्तवृत्तियों का प्रवाह जन्म-जन्मांतरों के कर्म-संस्कारों के प्रभाव से सांसारिक भोगों की ओर चल रहा है। उस प्रवाह को रोकने का उपाय 'वैराग्य' है और जो मन, जो चित्त—स्वभाव से ही चंचल है, उसे किसी एक ध्येय में स्थिर करने के लिए बारंबार चेष्टा करते रहने का नाम 'अभ्यास' है।

इसके बाद अभ्यास और वैराग्य के अतिरिक्त महर्षि पतंजलि चित्तशुद्धि व चित्तवृत्ति निरोध के लिए ईश्वर की शरणागति, वीतराग पुरुषों का ध्यान एवं क्रियायोग जैसे महत्त्वपूर्ण उपायों को भी बताते हुए कहते हैं—

ईश्वरप्रणिधानाद्वा।

—योगसूत्र-1/23

अर्थात—इसके अतिरिक्त ईश्वरप्रणिधान से भी समाधि की सिद्धि हो सकती है। ईश्वर की भक्ति यानी शरणागति का नाम 'ईश्वरप्रणिधान' है। ईश्वर सर्वसमर्थ हैं, वे भक्तवत्सल हैं, वे अपनी शरण में आए भक्तों को सब कुछ प्रदान कर सकते हैं।

वीतरागविषयं वा चित्तम्॥

—योगसूत्र-1/37

अर्थात—जिस पुरुष के राग-द्वेष सर्वथा नष्ट हो चुके हैं, ऐसे विरक्त पुरुष को ध्येय बनाकर अभ्यास करने वाला, उसके विरक्त भाव का मनन करने वाला चित्त भी स्थिर हो जाता है।

तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः॥

—योगसूत्र-2/1

अर्थात—तप, स्वाध्याय और ईश्वर शरणागति, ये तीनों क्रियायोग हैं। इनके अभ्यास से चित्तशुद्धि होती है। युगऋषि पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी के अनुसार, स्वधर्म के पालन हेतु कष्टों को सहर्ष सहन करने का नाम तप है। निष्काम भाव से इसका पालन करने से चित्त शुद्ध होता है। स्वाध्याय अर्थात स्वयं को जानने हेतु किया गया अध्ययन। जिससे अपने कर्त्तव्य व अकर्त्तव्य का बोध हो सके—ऐसे वेद, पुराण, उपनिषदों का स्वाध्याय, गायत्री मंत्र का जप, योगियों के जीवन चरित्र एवं सत्साहित्य आदि का स्वाध्याय करना चाहिए। ईश्वर के नाम, रूप, लीला आदि का श्रवण, कीर्तन, मनन, स्वयं को ईश्वर के हाथ का उपकरण मान स्वयं को पूर्णतः समर्पित कर देने का नाम ही ईश्वरप्रणिधान है।

योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण भी गीता—6/35 एवं 12/8,9,10,11 में चित्त की चंचलता को दूर करने के लिए ऐसे ही कुछ उपायों को बताते हैं—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

अर्थात—हे महाबाहो! निस्संदेह मन बड़ा चंचल है और कठिनता से वश में होने वाला है, परंतु हे कुंतीपुत्र अर्जुन! यह अभ्यास और वैराग्य से वश में होता है।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥
अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनञ्जय॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि॥
अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्॥

अर्थात—हे अर्जुन! चित्त की चंचलता को समाप्त करने के लिए तू मुझमें अपने मन को लगा और मुझमें ही बुद्धि को लगा, ऐसा करने से तू मुझमें ही निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है; और यदि तू अपने मन को मुझमें पूर्णतया लगाने में भी समर्थ नहीं है तो हे अर्जुन! अभ्यासरूप योग के द्वारा मुझको प्राप्त होने की इच्छा कर और यदि तू इसमें असमर्थ है तो केवल मेरे लिए कर्म करने के ही परायण हो जा। और यदि तू उपर्युक्त साधन को करने में भी असमर्थ है, तो मन, बुद्धि आदि पर विजय प्राप्त करने वाला होकर सब कर्मों के फल का त्याग कर, अर्थात सभी कर्मों के फलों को मुझे अर्पित कर और निष्काम कर्म कर।

इस प्रकार अभ्यास एवं वैराग्य, ईश्वर की शरणागति, भक्ति, वीतराग पुरुषों का ध्यान, क्रियायोग एवं निष्काम कर्म आदि चित्तशुद्धि के विभिन्न उपाय हैं। इनमें से किसी भी साधन का श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक सतत अभ्यास करने से चित्त के संस्कारों का सबीज नाश हो जाता है। तब चित्त आत्मा में विलीन हो जाता है और प्रकृति के संयोग का अभाव हो जाने पर द्रष्टा की अपने स्वरूप में स्थिति हो जाती है। अस्तु हम अपनी रुचि के अनुसार इनमें से किसी भी उपाय का अवलंबन कर अपने स्वरूप को पा सकते हैं, बंधनमुक्त हो सकते हैं व मोक्ष, मुक्ति व आनंद के अधिकारी हो सकते हैं। इसमें कुछ भी संशय नहीं है। ❑

भगवान शिव एवं माता पार्वती आकाशमार्ग से जा रहे थे। माँ पार्वती ने गंगास्नान को उमड़ी भीड़ देखी। वे भगवान शिव से बोलीं—"भगवन्! ये लोग कितने धर्मनिष्ठ और श्रद्धालु हैं।" शंकर जी हँसे और बोले—"देवी! सच्ची श्रद्धा तो विरलों में ही होती है। ये सब तो श्रद्धालु कम और दुराचारी अधिक हैं।" स्नानार्थियों की परीक्षा लेने के लिए, दोनों नीचे उतर आए। पार्वती जी एक ब्राह्मणी का वेश बनाकर खड़ी हो गईं और शिव जी एक अपंग पति का वेश बनाकर वहीं लेट गए। जो भी वहाँ से जाता, पार्वती जी उससे प्रार्थना करतीं—"कृपया! मेरे अपाहिज पति को गंगा जी तक पहुँचा दें।"

सहायता की बात तो दूर, कोई तो बिदककर निकल जाता और कोई पार्वती जी पर ही बुरी दृष्टि डालने लगता। कुछेक ने तो पार्वती जी से यहाँ तक कहा कि वे उनके अपंग पति को यों ही छोड़ दें। भगवान शिव पार्वती जी की ओर मुस्कराकर देखते और कहते—"यह देखो, ये है इनकी श्रद्धा।" इतने में एक गरीब किसान आया और पार्वती जी से बोला—"माँ! आप आगे चलें, मैं इन्हें तट तक पहुँचा देता हूँ।" उसकी बात सुनकर भगवान शिव एवं माता पार्वती अपने असली स्वरूप में प्रकट हुए और उसे आशीर्वाद देते हुए बोले—"असली श्रद्धा यह है। जो दूसरों की सेवा की प्रेरणा न दे, वह श्रद्धा नहीं हो सकती।" असली श्रद्धा पीड़ितों की पीड़ा में मदद करना और पतितों को सही राह दिखाना सिखाती है।

परमपूज्य गुरुदेव की अमृतवाणी – 2

अध्यात्म का वास्तविक स्वरूप

(द्वितीय किस्त)

विगत अंक में आपने पढ़ा कि परमपूज्य गुरुदेव आध्यात्मिकता का वास्तविक स्वरूप समझाते हुए कहते हैं कि अध्यात्म का मूल अर्थ अपनी चेतना के परिष्कार और व्यक्तित्व के परिशोधन से है। दुर्भाग्यवश हम कर्मकांडों में ही उलझकर रह जाते हैं और मूल ज्ञान की ओर से चेहरा घुमा करके बैठ जाते हैं। सारी आध्यात्मिक शिक्षाओं का मूल उद्देश्य हमें धर्म के वैज्ञानिक स्वरूप से परिचित कराना है, जिसमें देवताओं से लेकर कर्मकांड की विभिन्न पद्धतियों का प्रयोग एक बड़े उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जाता है। जब तक उस उद्देश्य को आत्मसात् नहीं किया जाता और अध्यात्म की मूल शिक्षाओं को जीवन में नहीं अपनाया जाता, तब तक एक नूतन व श्रेष्ठ जीवन की शुरुआत नहीं हो पाती। आइए हृदयंगम करते हैं, उनकी अमृतवाणी को........

हम ही हैं हमारे भाग्य विधाता

मित्रो! हर चीज की कीमत है। अपना श्रम और अपना मनोयोग, उस काम में लगाइए, जिसे आप करना चाहते हैं और उन्नति की ओर बढ़ते हुए चले जाइए, जैसे कि जॉर्ज वाशिंगटन गरीबी की अवस्था में से ऊपर उठते हुए चले गए थे। वे अमेरिका के राष्ट्रपति हो करके रहे। अब्राहम लिंकन ऐसे परिवार में पैदा हुए थे, जहाँ बेचारों के लिए रोटी खाने तक की गुंजाइश नहीं थी, लेकिन अमेरिका के राष्ट्रपति हो करके रहे। ऐसे महामानव न केवल उस देश में, बल्कि इस देश में भी पैदा हुए हैं और सारी दुनिया में पैदा हुए हैं। संकल्पवान व्यक्ति किस तरह से आगे बढ़े। नेपोलियन बोनापार्ट सरीखा व्यक्ति, कमजोर व्यक्ति, जो सिपाही बनने के लिए कोशिश करता था, लेकिन कितना बड़ा अधिनायक बन गया।

सारी-की-सारी दुनिया के महत्त्वपूर्ण व्यक्ति इसी तरह से हुए हैं, जिन्होंने अपने संकल्प किए हैं, निश्चय किए हैं और निश्चय करके कीमत चुकाने के लिए तैयार हो गए। क्या कीमत हो सकती है? बेटे, अपने आपके साथ, अपनी कमजोरियों के साथ लड़ाई लड़ना है। वास्तव में हमें किसी ने नहीं गिराया है। हमें गिराने की ताकत दुनिया में किसी में नहीं है। हम अपने आप को स्वयं गिराते हैं। हमारी कमजोरियों के अलावा, कोई हमें गिराने वाला नहीं है और हमारी संकल्पशक्ति के अलावा दुनिया में हमें कोई उठाने वाला नहीं है। नहीं साहब! भगवान जी उठा सकते हैं। नहीं बेटे! भगवान जी नहीं उठा सकते। देवता गिरा सकते हैं? शनिश्चर गिरा सकते हैं? नहीं बेटे! देवता या शनिश्चर नहीं गिरा सकते हैं? देवता उठा सकते हैं? नहीं बेटे! देवता नहीं उठा सकते। कोई किसी तरह नहीं गिरा सकता। आप ही अपने आप को गिराते हैं और आप ही उठाते हैं।

इसलिए मित्रो! कल के पाठ में हमने आप को यह बताया था कि आप बाहर तलाश करने की अपेक्षा, अपनी मुसीबतों का कारण अपने भीतर तलाश कीजिए। अपनी तरक्की का सहारा बाहर मत देखिए, वरन अपनी नाभि में देखिए और कस्तूरी हिरन के तरीके से तलाश करिए कि आपके भीतर ही सुगंध है और आपके भीतर ही वे सारी मुसीबतें हैं, जिनकी वजह से आप तबाह हुए हैं और भविष्य में तबाह होंगे। इसलिए आत्मशोधन करना, अपने आप की साफ-सफाई करना, अपने आप को ठीक करना और अपनी गलतियों को सँभाल लेना,

अपने आप को परिष्कृत कर लेना—यह पहला वाला पाठ था, जो मैंने आपको बताया था कि गायत्री मंत्र में जो पाँच क्रियाएँ, जिनको हम षट्कर्म कहते हैं, इसीलिए बताए जाते हैं। आज हम आपको एक और पाठ पढ़ाना चाहते हैं। वह यह पाठ पढ़ाना चाहते हैं कि आपको अपना कोई-न-कोई लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए।

इष्ट माने लक्ष्य

मित्रो! लक्ष्य को संस्कृत में—आध्यात्मिक भाषा में कहते हैं—इष्ट। इष्ट किसे कहते हैं? आपका कौन-सा इष्ट है? साहब! हमारे इष्ट हैं—हनुमान और आपका इष्ट क्या है? देवी। आपका इष्ट क्या है? रामचंद्र जी। आपका इष्ट क्या है? गणेश जी। सबके इष्ट होते हैं न? हाँ साहब! क्या अर्थ होता है—इष्ट का? इष्ट किसे कहते हैं? हिंदी में बताइए आप। बेटे! इष्ट कहते हैं—लक्ष्य को। लक्ष्य से क्या मतलब है?

लक्ष्य से यह मतलब है कि आपको जाना कहाँ है और बनना क्या है? आपके सामने कोई नक्शा तो होना चाहिए। कहाँ जा रहे हैं साहब? ऋषिकेश। कितनी दूर है? 12 मील दूर है। कितना किराया लगता है? 26 रुपये लगते हैं। लक्ष्य निर्धारित हो गया न कि कहाँ जा रहे हैं। कहाँ जा रहे हैं साहब? बंबई या कलकत्ता जा रहा हूँ। फिर मैं मद्रास या कश्मीर चला जाऊँगा। फिर कहाँ जाएँगे? अरे साहब! जहाँ कहीं रेलगाड़ी ले जाएगी, वहीं चला जाऊँगा। यह भी कोई तरीका है? यह भी कोई ढंग है? बेटे क्या पढ़ेगा? स्कूल में पढ़ूँगा। अरे बेटे! यह तो बता कि तू पढ़ेगा क्या? फिजिक्स पढ़ेगा, साइंस पढ़ेगा, कॉमर्स पढ़ेगा, आर्ट्स पढ़ेगा? नहीं साहब! जो मास्टर पढ़ा देंगे, वही पढ़ूँगा। यह भी कोई तरीका है? यह भी कोई ढंग है? दुनिया में कहीं ऐसी कोई पढ़ाई होती है क्या? पढ़ाई के लिए हमेशा लक्ष्य तय करना पड़ता है, इष्ट तय करना पड़ता है।

मित्रो! जब कोई सफर करना पड़ता है, तो उसके लिए इष्ट तय करना पड़ता है। आध्यात्मिक तरक्की के लिए भी हमें कोई इष्ट तय करना पड़ता है। इसे कहते हैं—लक्ष्य। हमको अपने जीवन का विकास करते-करते कहाँ जा पहुँचना है? वह जगह कहाँ होनी चाहिए? जहाँ हमें पहुँच जाना है, जहाँ तुम्हें पहुँचना है, उसे मैं देवताओं का सिंबल कहता हूँ। मेरी लड़कियाँ कल आपको समझाने की कोशिश कर रही थीं कि देवता सिंबल के अतिरिक्त और कुछ नहीं हैं। नहीं साहब! देवता ऐसे होते हैं, जो फालतू में यह तलाश कर रहे होते हैं कि हमारा पाठ कौन कर रहा है? जो कोई पाठ कर रहा होता है? उसे डायरी में नोट करते रहते हैं। आपने कितना पाठ किया लाला गुलाब चंद्र जी? हनुमान जी का 324 पाठ किया। अच्छा साहब! 3990 रुपयों का थैला, उसके यहाँ भेज दीजिए। पाठ करने वालों के यहाँ इस तरह के फल की, परिणाम की वर्षा होती है, आप यही समझते थे न? देवताओं का यही धंधा है? देवताओं का यही पेशा है कि लोगों के लिए चीजें तलाश करते फिरें?

मनोकामना पूरी करना नहीं है काम देवताओं का

मित्रो! किसने कितने अक्षत चढ़ा दिए, कितनी पूजा कर दी, कितने पाठ करा दिए? उसी पाठ के हिसाब से उसकी मनोकामना पूरी कर दी जाए, देवताओं के जिम्मे बस, यही काम रह गया है? पाठ कीजिए, मनोकामना पूरी कीजिए। अरे मुनीम जी! लोगों का जल्दी-जल्दी एकाउंट तैयार कीजिए। क्या करें? ठाकुर रामलाल जी ने चंडी के ग्यारह पाठ कराए। चंडी जी! इनको पैसा दीजिए। क्या भेजें? इनके ऊपर तो इन्कमटैक्स के सात मुकदमे चल रहे हैं, तो ठीक कराइए? चंडी जी का पाठ कराइए और मुकदमे जीत करके लाइए। चंडी जी का एकाउंट ठीक कराइए। हमारी मनोकामना पूरी कीजिए। आप इस धंधे को समझते हैं और सोचते हैं कि देवताओं का यही धंधा है। फिर तो देवता बड़े घटिया और निकम्मे आदमी हैं, जो दुनिया में से कर्म के फल के सिद्धांत को खतम करना चाहते हैं। पुरुषार्थ को खतम करना चाहते हैं। न्याय को खतम करना चाहते हैं। इंसाफ को खतम करना चाहते हैं और पूजा-पाठ की रिश्वत लेकर के आपकी मनोकामना को पूरा करना चाहते हैं।

मित्रो! आपके पाठ को मैं रिश्वत कहूँगा, चालाकी और चमचागीरी कहूँगा। लड़कियाँ कल कह रही थीं—चमचागीरी। यह शब्द मुझे बहुत फिट लगा, आपके स्तोत्रपाठ के लिए। आप क्या स्तोत्रपाठ कर रहे हैं? किसका स्तोत्रपाठ कर रहे हैं? हनुमान जी का स्तोत्रपाठ कर रहे हैं। क्या-क्या कह रहे हैं—

सहस्त्र योजन जापर भानू। लील्यो ताहि मधुर फल जानू॥

सहस्त्र योजन लंबा जो सूर्य है, उसको हनुमान जी ने गाल में दबा लिया। गाल में दबा करके मीठे फल नारंगी की तरह से सूरज को चबाने लगे। बात समझ में आती है।

यह चमचागीरी की इंतिहा है। पुराने जमाने में चारण थे। वे भी यही कहते थे कि राजा साहब की गद्दी बनी रहे और राजा साहब ऐसे और वैसे बने रहें। आपने तो आखिर कर ही दिया। सूरज कितना लंबा है ? चार सौ मील लंबा है। नहीं बेटे! वह करोड़ मील लंबा है। फिर पृथ्वी पर बैठा हुआ कोई मनुष्य या देवता—मसलन हनुमान, हैं तो पृथ्वी पर ही। हाँ साहब! और पृथ्वी से बड़े तो नहीं हैं ? आदमी जब पृथ्वी पर खड़ा होगा, तो उसका गाल पृथ्वी के बराबर होगा कि छोटा होगा और सूरज तो करोड़ों गुना बड़ा है, तो फिर हनुमान जी उसे गाल में कैसे ले लेंगे ? मुझे समझा तो दीजिए। सूरज की गरमी हमें यहाँ तपा देती है और अगर वही गरमी हनुमान के गाल में जाएगी, तो उनका गाल जलेगा या रह जाएगा ? ''सहस्र योजन जा पर भानू।'' बस, हनुमान जी की चमचागीरी करेंगे और मनोकामना पूरी कराएँगे, पागल कहीं के।

देवताओं की दुर्गति तो न करें

मित्रो! यही पागलपन और यही जाहिलपन जो कि आपके ऊपर हावी हो गया है और देवताओं को भी घटिया बनाना चाहता है। आप घटिया रहें तो रहें, परंतु देवताओं को ऐसा क्यों बनाते हैं ? देवताओं की क्यों मिट्टी पलीद करते हैं। देवताओं की दुर्गति करने पर क्यों उतारू हो गए हैं ? आप मांस खाएँ, ठीक है। अपने साहब को ह्विस्की पिलाइए, मटन-मुरगा खिलाइए, उससे काम निकालिए। नहीं साहब! हम तो देवताओं के साथ भी यही सलूक करना चाहते हैं। भैरव जी को भी शराब पिलाना चाहते हैं। देवी जी को भी मटन खिलाना चाहते हैं। उनको आमलेट खिलाना चाहते हैं और उनसे मनोकामना पूरी कराना चाहते हैं। अरे बाबा! इन पर तो दया कर, इन पर तो रहम कर, तू चाहे वहशी बन, पर इनको तो भला आदमी बना रहने दे। देवता नाम जिनके लिए इस्तेमाल किया जाता है, कम-से-कम देवता के नाम को तो इस्तेमाल करने के लायक बना रहने दे। देवताओं को तो बदनाम मत कर। देवताओं को तो इतना कमीना मत बना। देवताओं की मिट्टी पलीद तो मत कर।

लेकिन मित्रो! आजकल लोगों ने अपनी मिट्टी पलीद करने के बाद यह कसम खाई है कि हम हर किसी की मिट्टी पलीद करेंगे और वह दूसरा आदमी होगा देवता। देवताओं को हम घटिया बनाकर छोड़ेंगे। देवताओं को सिद्धांतरहित बना करके छोड़ेंगे। देवताओं को पक्षपाती बना करके छोड़ेंगे। देवताओं को कर्मफल के सिद्धांत को न मानने वाला बना करके छोड़ेंगे और न जाने क्या-से-क्या बना करके छोड़ेंगे। बेटे! देवताओं पर दया करो, देवताओं को क्षमा करो। देवताओं पर करुणा करो। देवताओं को जिंदा रहने दो। आप देवताओं का पूजन करने चले हैं, तो उनको ज़िंदा रहने दें।

मित्रो! देवताओं का उद्देश्य क्या हो सकता है ? देवताओं का उद्देश्य एक ही है और वह है—हमारा इष्ट। इष्ट माने लक्ष्य। लक्ष्य माने जैसा बनना है। आखिर बनना क्या है ? जाना कहाँ है ? उनके सिद्धांत क्या हैं ? आखिर हमको बनना क्या है, इष्ट इसी का नाम है। देवता के नाम पर हम एक आलंकारिक प्रतिमा बना करके रखते हैं और यह देखते हैं कि हमें क्या बनना चाहिए ? आप कभी ताजमहल देखने गए हों और आपने वहाँ का म्यूजियम देखा हो, तो शाहजहाँ ने ताजमहल बनाने से पहले न केवल कागज पर नक्शे बनाए थे, बल्कि एक मॉडल भी बनाया था।

मानसिक अस्त-व्यस्तता ही जीवन में अभाव एवं विपन्नता की परिस्थिति उत्पन्न करती है। प्रायः प्रत्येक महापुरुष विपन्न परिस्थितियों में जन्मा अथवा रहा है, उसने अपने मनोबल से ही अनुकूलता उत्पन्न की और साधन जुटाए। इस प्रकार का मनोबल प्राप्त करने के लिए हमें सारा ध्यान अपनी मनोभूमि के निरीक्षण, संशोधन, सुधार एवं विकास में लगाना होगा। यह प्रयोजन जितना-जितना पूरा होता चलेगा, हम आंतरिक दृष्टि से उतने ही सशक्त-समर्थ होते चले जाएँगे। तब मानसिक स्वस्थता का इतना अधिक लाभ एवं आनंद उपलब्ध होगा, जिसके आधार पर यह जीवन और यह संसार स्वर्ग जैसे मंगलमय एवं उल्लासपूर्ण अनुभव होने लगें।

—परमपूज्य गुरुदेव

इंजीनियरों से कहा कि साहब! आप यह नक्शा कागज पर बनाकर ले आते हैं, जो हमारी समझ में नहीं आता। आप एक मॉडल बना करके ले आएँ, ताकि हम यह देख लें कि ताजमहल कितना खूबसूरत बनता है। इंजीनियर मॉडल बना करके ले आए। शाहजहाँ ने कहा कि देखिए यह मीनार इसके हिसाब से कम मालूम पड़ती है। इसका टॉप इस प्रपोरशन से कम है, इसको आप बढ़ा दीजिए। इसको घटा दीजिए। इसकी चौड़ाई कम कीजिए। इसकी लंबाई बढ़ाइए। इंजीनियरों ने नक्शे के मॉडल को काट-छाँट करके ठीक कर दिया और जब शाहजहाँ ने पसंद कर लिया कि हाँ, यह प्रपोजल हमको मंजूर है। इसकी यह शेप हमें मंजूर है। बस, उसी हिसाब से, उसी प्रपोजल के हिसाब से नींव खोदनी शुरू की गई और ताजमहल बनाना शुरू कर दिया।

जीवन का आदर्श हैं देवता

मित्रो! मॉडल किसका था? ताजमहल का। आप दयालबाग जाइए। आपका आगरा कभी जाना हुआ तो आप दयालबाग जाना। वहाँ स्वामी जी महाराज की समाधि बन रही है। समाधि बनाने से पहले कमेटी के मेंबरों ने यह निश्चय किया कि हमको अपने गुरु की समाधि कैसी बनानी है—इसके लिए भी इंजीनियरों ने एक मॉडल बनाया था। कितने मंजिल की इमारत बनेगी, सीढ़ियाँ कैसी बनेंगी? नक्शा कैसे बनेगा? सारी-की-सारी चीजें बना करके एक मॉडल तैयार कर लिया गया। आप दयालबाग के म्यूजियम में जाइए और तलाश करके यह पता लगाइए कि आपका दयालबाग बनने वाला है, गुरुजी की समाधि बनने वाली है, वह कितनी बन गई और कितनी बननी बाकी है? वह फट से आपको मॉडल दिखा देंगे। देखिए यहाँ तक तो बन चुकी है और इतनी बननी बाकी है। इसमें अमुक-अमुक चीजें तैयार हो गईं और अमुक-अमुक चीजें बाकी हैं। वहाँ मॉडल बना हुआ रखा है।

मित्रो! हमारे जीवन का मॉडल, हमारे जीवन के लक्ष्य का मॉडल—देव है। देवताओं को कैसा बनना चाहिए, कैसा होना चाहिए? यह सारी-की-सारी बातें हमारी बच्चियाँ व्याख्या के रूप में समझा रही थीं। हमको और आपको कौन-सा आदर्श पसंद है? शिव पसंद है, तो आप यह मानकर चलिए कि शिव भगवान कैसे हैं? वे गंगा के रूप में उत्कृष्ट विचारधारा को प्रवाहित करते हैं। आप विचार कीजिए कि हमारे शिव के, सिर के ऊपर चंद्रमा टँगा हुआ है अर्थात उनका मस्तिष्क हमेशा संतुलित रहता है। जरा-जरा सी बात के ऊपर गरम नहीं हो जाता। जरा-जरा सी बात के ऊपर विक्षुब्ध नहीं हो जाता।

हमारा लक्ष्य, हमारा मॉडल, हमारा मस्तिष्क कैसा होना चाहिए? जैसा कि शंकर जी का संतुलित दिमाग-संतुलित मस्तिष्क है। हमारी विचारणाएँ कैसी होनी चाहिए और हमारा दिमाग कैसा होना चाहिए? जैसा कि शंकर जी का है। शंकर जी के मस्तिष्क में से गंगा की धाराएँ प्रवाहित होती हैं। हमारी लड़कियाँ आपको समझा रही थीं कि हमारी दो आँखें नहीं, वरन तीसरी आँख भी है। तीसरी आँख—दूर देखने वाली आँख, भविष्य को देखने वाली आँख, बुढ़ापे को देखने वाली आँख, मौत को देखने वाली आँख, स्वर्ग-नरक को देखने वाली आँख, अगले जन्म को देखने वाली आँख भी है।

मित्रो! हमारी यह दो आँखें तो इतनी कमजोर हैं कि कागज पर चश्मे का नंबर देखती हैं। कितने नंबर का चश्मा है? अरे साहब! माइनस आठ है। बिना चश्मे के पढ़ भी नहीं पाते। बिलकुल नाक पर कागज रखकर पढ़िए। बेटे, हमको यह बीमारी हो गई है शॉर्टकट में अभी का, आज का फायदा हमें दिखाई पड़ता है। कल का नुकसान हमको दिखाई नहीं पड़ता। अरे साहब! बुढ़ापे में क्या होने वाला है, यह दिखाई नहीं पड़ता। इस समय तो मौज की छनती है, आगे की खुदा जाने। मरने के बाद क्या होगा? बुढ़ापे में क्या होगा? जो कुछ होगा, देखा जाएगा।

अरे बेटे! संयम से तो रह। अरे साहब! संयम-वंयम से क्या रहें? अभी तो मौज-मस्ती के दिन हैं। बुढ़ापे में ही तो मुसीबत आएगी। आँखों में मोतियाबिंद बुढ़ापे में ही तो होगा। अभी तो बुढ़ापा बहुत दिन की बात है। अभी तो बुढ़ापे में बाईस साल की देर है। अभी जो कुछ करना है, सो कर लें। चोरी से लेकर के बुरे-से-बुरे काम हम इसलिए करते हैं कि हम इस समय की बात देखते हैं।

मित्रो! शंकर जी के तरीके से अगर विवेक की आँख हो और आपका जीवनलक्ष्य शिव हों तो आपको एक और आँख खोलनी चाहिए, जो कामदेव को जलाकर खाक कर सकती है। ऐसी आँख आपको खोलनी चाहिए, जो टेलिस्कोप के तरीके से दूर की बात, कई-कई मील दूर का नजारा हमको दिखा दे। टेलिस्कोप हमें दिखा देता

है कि दुश्मन वहाँ से आ रहा है। फौज वहाँ जा रही है। बादल वहाँ से आ रहे हैं। तूफान वहाँ से आ रहा है। हमारा टेलिस्कोप दूर की चीजें दिखा देता है।

अगर हमारा लक्ष्य शंकर जी हैं तो दूरदर्शिता और विवेकशीलता होनी ही चाहिए और मित्रो! शंकर जी के गले में मुंडों की माला पड़ी रहती है। आप केवल बार-बार शीशे में अपनी इस शक्ल को न देखें, वरन उसे भी देखें, जो मरने के बाद में लातों से ठोकर खाता हुआ, मुंड सड़क पर पड़ा हुआ है और मरघट में पड़ा हुआ है। अपना वह मुंड आपको दिखाई पड़ता है? नहीं साहब! हमको तो दिखाई नहीं पड़ता। शीशे में देखकर जिस पर हम क्रीम लगाते हैं, पाउडर लगाते हैं, वह मुंड तो दिखता है, पर वह मुंड क्यों नहीं दिखाई पड़ता, जो श्मशान में पड़ा हुआ है।

अगर आप शिव हैं, तो आपको मौत दिखाई पड़नी चाहिए और आपका घर श्मशान में होना चाहिए। आपको मौत की तैयारी करनी चाहिए। जब हम मरेंगे तो शांति के साथ मरेंगे। भगवान के दरवाजे पर जाएँगे तो हम शान से सिर ऊँचा उठा करके कहेंगे कि आपने जिस उद्देश्य के लिए हमको मनुष्य का जन्म दिया था, उसे ठीक तरीके से पूरा कर लिया। अब बताइए आप क्या हुक्म करते हैं? ऊँचा सिर लेकर के भगवान के पास जाइए, पर यह तभी हो सकता है, जब आप मौत का भी ख्याल रखें। मौत का ख्याल तो आपको कभी नहीं आता, केवल जिंदगी का ख्याल आता है।

मित्रो! शिव की बहुत सारी बातें लड़कियाँ कह रही थीं। किस-किसकी बात बताऊँ, सारे-के-सारे देवता हमारे जीवन के मॉडल हैं। हमारा लक्ष्य, हमारा उद्देश्य क्या होना चाहिए? हमारे क्रियाकलाप क्या होने चाहिए? हमारी गतिविधियाँ क्या होनी चाहिए? हमारा चिंतन क्या होना चाहिए? हमारी आस्था क्या होनी चाहिए? इन सारी समस्याओं के समाधान हम उस खिलौने के माध्यम के द्वारा तलाश कर सकते हैं, जो शंकर के रूप में बनाया गया है और अपने आप के बारे में, अपनी गतिविधियों के बारे में, रीति-नीति के बारे में यह फैसला कर सकते हैं कि हमको चलना किधर है? विचार क्या करना है? ये है शंकर का मॉडल, जिसे हमने अपना इष्ट बनाया है।

मित्रो! बाकी देवताओं के बारे में मैं आपको क्या बताऊँ? दो देवताओं के बारे में मैं ज्यादा बता सकता हूँ, जिन पर मेरा ज्यादा विश्वास है। एक शिव जी के ऊपर और एक शालग्राम के ऊपर। शालग्राम जी कैसे गोल-मटोल पिंड के रूप में, मंदिर में रखे रहते हैं। गोल-मटोल पिंड, अरे साहब! इनके तो हाथ-पैर भी नहीं हैं। आँख-कान, दाँत भी नहीं हैं। इनकी तो टाँगें भी नहीं हैं। ये तो कपड़े भी नहीं पहनते हैं।

ये कैसे इष्टदेव हैं! बेटे, ये हमारे इष्टदेव इसलिए हैं कि ये सारे-के-सारे विश्व के प्रतीक हैं, ग्लोब के तरीके से नमूने हैं और हम यह तय करते हैं कि हमारा इष्ट यह सारा विश्व है और हमारा इष्ट लोक-मंगल है। हमारा इष्ट समाज है। हमारा इष्ट धर्म और संस्कृति है और जिसका प्रतीक है—यह ग्लोब, गोल-मटोल यह पिंड। पिंड शंकर जी के रूप में है और बेटे! हमारा इष्ट है—शालग्राम।

शालग्राम किसे कहते हैं? अरे बेटे! नाम का फरक है। शिवलिंग में और विष्णु में यानी शालग्राम में क्या फरक है? "**एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति**"—दोनों एक हैं। दुनिया का मालिक एक है। इस दुनिया का संचालक एक है। अनेक देवी-देवता अगर पैदा हो गए होते, तो अब तक दुनिया में गदर फैल गया होता। अब तक देवताओं में ऐसी आफत आ जाती कि उनमें मुकदमेबाजी हो जाती। इलेक्शन पिटीशन दायर हो जाते। फौजदारी हो जाती, खून-खराबा हो जाता। कत्लेआम हो जाते और देवताओं में मार-काट हो जाती। फिर देवता अलग, चंडी अलग, काली अलग, देवी अलग, सरस्वती अलग, लक्ष्मी अलग—अरे बाबा! क्या आफत आ गई? ये तो मुसीबत पैदा करेंगे।

मित्रो! देवताओं की इतनी हुकूमतें नहीं हो सकतीं। एक ही हुकूमत हो सकती है। भगवान दुनिया में एक है। उसी के अनेक नाम हैं। बेटे! शालग्राम, विष्णु और शिव एक हैं। वे दो हो ही नहीं सकते। दो विधाता हैं ही नहीं। हमने अलग-अलग नाम रखे हैं और कोई फरक नहीं है। हमको कोई गुरुजी कहता है। कोई आचार्य जी कहता है, कोई पंडित जी कहता है। कोई स्वामी जी कहता है। कोई संपादक जी कहता है। कोई न जाने क्या-क्या कहता है? हमारे पिताजी-माताजी हमको बेटा कहते थे और हमारा बेटा हमको पिताजी कहता है और हमारे मित्र हमको भाईसाहब कहते हैं, न जाने हमारे कितने नाम हैं।

ऐसे ही भगवान के अनेक नाम हैं। हमारे हजारों फोटो खिंचे हुए हैं। कोई सामने से आचार्य जी बैठे हुए हैं, कोई खाना खाते हुए हैं, कोई व्याख्यान देते हुए हैं, तो क्या गुरुजी व्याख्यान ही देते हैं? नहीं बेटे! खाते भी हैं, नहाते भी हैं, सोते भी हैं, केवल व्याख्यान ही नहीं देते। व्याख्यान एक घंटे देते हैं, बाकी समय में अन्य दूसरे काम भी करते हैं। भगवान एक और फोटो अनेक। नाम और रूप अनेक, लेकिन देवता एक। दुनिया में एक ही देवता है, लेकिन नाम और रूप असंख्य हैं। साहब! हम तो देवी के उपासक हैं। हम गायत्री के उपासक हैं, तो गायत्री नाराज होंगी या प्रसन्न होंगी? बेटे! गायत्री का नाम देवी है और देवी का ही नाम गायत्री है। नहीं साहब! देवी और गायत्री नाराज हो जाएँगी? नहीं बेटे! कोई नाराज नहीं होंगी। गुरुजी को माला पहना दें, तो आचार्य जी नाराज हो जाएँगे? नहीं, कोई नाराज नहीं होगा। जो गुरुजी हैं, वही आचार्य जी हैं। [क्रमशः]

एक राजा जंगल में आखेट के लिए गया। रास्ता भूल जाने पर वह भूखा-प्यासा एक वनवासी की झोंपड़ी पर पहुँचा। वहाँ उसे आतिथ्य मिला तो उसकी जान बची। वनवासी उसे सुरक्षित मार्ग तक छोड़ आया। सुरक्षित हो जाने पर राजा ने उस वनवासी से कहा—"हम इस राज्य के शासक हैं। तुम्हारी सज्जनता से प्रभावित होकर हम हमारे राज्य का चंदन वन तुम्हारे नाम करते हैं। उसके कारण तुम्हारा जीवन आनंदमय बीतेगा।" वनवासी राजा का आदेश लेकर नगर अधिकारी के पास गया तो उसे चंदन वन दे दिया गया। चंदन का क्या महत्त्व है? उससे किस प्रकार लाभ उठाया जा सकता है—यह सब उसे पता न था। इस जानकारी के अभाव में वह रोज चंदन के वृक्ष काटकर उनका कोयला बनाकर शहर में बेचता। किसी प्रकार उसका गुजारा हो पाता।

धीरे-धीरे सारे वृक्ष समाप्त हो गए। एक अंतिम पेड़ बचा। वर्षा होने के कारण उसका कोयला न बनाया जा सका तो उसने उसकी लकड़ी काटकर बेचने का निश्चय किया। लकड़ी का गट्ठर लेकर जब वह नगर में पहुँचा तो व्यापारियों ने उसकी कीमत बहुत ज्यादा लगाई। आश्चर्यचकित वनवासी ने इसका कारण पूछा, तो व्यापारी बोले—"यह चंदन की लकड़ी है। अत्यंत मूल्यवान है। यदि तुम्हारे पास और हो तो इसका प्रचुर मूल्य प्राप्त कर सकते हो।" अब वह वनवासी अपनी मूर्खता पर पछताया कि उसने इतना मूल्यवान चंदन वन कौड़ी के दाम बेच दिया। उसको सांत्वना देते हुए एक विचारशील व्यक्ति बोला—"मित्र! पछताओ मत। सारी दुनिया ऐसी ही नासमझ है। जीवन भी इसी प्रकार मूल्यवान है, पर लोग उसे वासनाओं और तृष्णाओं के बदले कौड़ी के मोल गँवाते हैं। तुम्हारे पास जो एक वृक्ष बचा है, उसी का सदुपयोग कर लो और उससे प्रेरणा लेकर जीवन का सदुपयोग करने का प्रण लो। वही तुम्हारी सच्ची संपदा है।"

विश्वविद्यालय परिसर से —158

समस्त विश्व को भारतीय अनुदानों की सौगात देता विश्वविद्यालय

देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर के विस्तृत होते अंतर-राष्ट्रीय फलक को यहाँ संपन्न होने वाली गतिविधियाँ सुदृढ़ आधार प्रदान करती हैं। इन गतिविधियों के क्रम में विगत दिनों परिसर में 'उसिनदिएना पर्व' का आयोजन किया गया। यह पर्व देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर स्थित एशिया के प्रथम बाल्टिक संस्कृति एवं अध्ययन केंद्र द्वारा भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, भारत सरकार के सहयोग से संपन्न कराया गया था।

इस उसिनदिएना पर्व का शुभारंभ केंद्रीय संस्कृति व पर्यटन राज्यमंत्री डॉ० महेश शर्मा, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या, भारत में लाटविया के राजदूत श्री एवरिस ग्रोजा ने संयुक्त रूप से दीप प्रज्वलन करके किया। इस अवसर पर लाटविया विश्वविद्यालय के कुलाधिपति प्रो0 मारसिस ऑजिन्स, लाटविया विश्वविद्यालय की भारत शिक्षा केंद्र की निदेशक डॉ० ऐंकरावा, देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलपति श्री शरद पारधी जी, प्रतिकुलपति जी आदि भी उपस्थित थे।

उसिनदिएना पर्व में मुख्य अतिथि के रूप में पधारे डॉ० महेश शर्मा ने अपने संबोधन में कहा कि भारतीय संस्कृति का विकास तेजी से हो रहा है और जल्द ही हमारा देश पूरे विश्व का सांस्कृतिक नेतृत्व करेगा। उन्होंने कहा कि बाल्टिक देशों सहित दुनिया भर में भारतीय संस्कृति का बोलबाला बढ़ा है। इसमें सबसे बड़ा योगदान युगपुरुष पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी जैसे उन महापुरुषों का है, जिन्होंने अपने आध्यात्मिक तप एवं पुरुषार्थ से सांस्कृतिक राजदूतों का विशाल संगठन तैयार कर विश्व के कोने-कोने में हमारे सांस्कृतिक मूल्यों को पहुँचाने का कार्य किया। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के क्रियाकलापों की सराहना करते हुए उन्होंने कहा कि यह विश्वविद्यालय भारत की सोच को सुधारने का कार्य कर रहा है। यहाँ के युवा भारतीय संस्कृति के अग्रदूत बनकर एक दिन सारे विश्व में भारतीय ज्ञान की अलख जगाएँगे।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी ने कहा कि जब देश आजाद हुआ था, तब एक नए भारत की शुरुआत हुई थी, इन दिनों उस दिशा में और तेज गति से कार्य हो रहा है। उन्होंने कहा कि वैश्विक एकता एवं शांति के लिए गायत्री परिवार पूरे विश्व में सक्रिय है, जिसका मुख्य स्तंभ संस्कृत, संस्कार व संस्कृति हैं। इस मिशन का लक्ष्य मानव में देवत्व के संस्कार विकसित कर पूरी धरती को स्वर्ग बनाने का है। श्रद्धेय कुलाधिपति ने बताया कि विगत पाँच वर्षों के बीच बाल्टिक देशों के साथ देव संस्कृति विश्वविद्यालय के माध्यम से जो संबंध बने हैं व उनसे हमारे पारस्परिक सांस्कृतिक संबंधों की मजबूती की वजह उन देशों की भाषा-शैली व संस्कृति है, जो भारत से काफी हद तक मेल खाती है।

आयोजन को संबोधित करते हुए भारत में लाटविया के राजदूत श्री एवरिस ग्रोजा ने कहा कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय एशिया का प्रथम बाल्टिक सेंटर का शुभारंभ अगस्त, 2016 में हुआ था, उसके बाद से दोनों देशों के युवा शैक्षणिक माध्यमों से काफी करीब आए हैं और दोनों देशों के बीच शिक्षा ही नहीं, वरन सांस्कृतिक संबंधों में भी मजबूती आई है। उन्होंने कहा कि लाटविया के विद्यार्थियों में भारत की पारंपरिक शिक्षा पद्धतियों पर आधृत पाठ्यक्रमों के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है। लाटविया विश्वविद्यालय के कुलाधिपति प्रो. मारसिस ऑजिन्स ने कहा कि निकट भविष्य में लाटविया में आयुर्वेद एवं परंपरागत शिक्षा पर आधृत शिक्षण की माँग बढ़ेगी, जिसे भारत को पूरा करना होगा। इस दौरान प्रो0 मारसिस ने लाटविया व भारत की शिक्षा प्रणाली पर आधृत एक पुस्तक देव संस्कृति विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति को भेंट की।

इस पर्व के आयोजन में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने लाटवियाई लोगों का भारत में एक नए परिवार और घर के रूप में संबोधित करते हुए स्वागत किया और कहा कि वे भारत के लोगों से अलग

नहीं हैं। उन्होंने कहा कि भारतीय संस्कृति एवं लाटविया की संस्कृति में काफी समानताएँ हैं। दोनों देशों के अनेक शब्द एवं परंपराएँ बिलकुल एक जैसे हैं। उदाहरण के तौर पर गायत्री, अग्नि, देव, वीर जैसे शब्द वहाँ पर सामान्य बातचीत में मिल जाते हैं।

इस अवसर पर श्रद्धेय कुलाधिपति जी द्वारा देव संस्कृति विश्वविद्यालय स्मृतिचिह्न, युगसाहित्य व शॉल ओढ़ाकर केंद्रीय मंत्री डॉ० शर्मा, राजदूत श्री ग्रोजा, प्रो० ऑजिन्स आदि अतिथियों का स्वागत एवं सम्मान किया गया। इस अवसर पर लाटविया से आए कलाकारों ने विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रमों एवं संगीत को प्रस्तुत कर सभी का मन मोह लिया। साथ ही सितार, वीणा, बाँसुरी आदि वाद्ययंत्रों के माध्यम से देव संस्कृति विश्वविद्यालय के संगीत विभाग के भाइयों ने उपस्थित अतिथियों को झूमने पर मजबूर कर दिया। कार्यक्रम के समापन से पूर्व श्रद्धेय डॉ० प्रणव पण्ड्या, डॉ० महेश शर्मा एवं श्री ग्रोजा ने विश्वविद्यालय की ई–बुक रेनोसाँ, संस्कृति संचार आदि का विमोचन किया। इस अवसर पर लाटविया से आए शिक्षाविदों, कलाकारों के अतिरिक्त देव संस्कृति विश्वविद्यालय, गायत्री विद्यापीठ के सदस्य व अनेक गणमान्य नागरिक और पत्रकारगण उपस्थित थे।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं शांतिकुंज की वैश्विक गतिविधियों के क्रम में विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति के नेतृत्व में यूगांडा में 108 कुंडीय गायत्री महायज्ञ संपन्न कराया गया एवं वहाँ के लोगों को भारतीय संस्कृति के जीवनमूल्यों से अवगत कराया गया। पूर्वी अफ्रीका के देश यूगांडा की राजधानी कंपाला में हुए इस आयोजन में यूगांडावासियों ने बढ़–चढ़कर भागीदारी कर मानव कल्याण एवं सामाजिक विकास के लिए चलाए जा रहे रचनात्मक कार्यक्रमों का हिस्सा बनने का संकल्प लिया।

इस अवसर पर प्रवासी भारतीयों के साथ–साथ यूगांडा के लोगों ने भी भारतीय वेशभूषा को अपनाया और श्रद्धा–भावना के साथ यज्ञ किया। इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने यूगांडावासियों को संबोधित करते हुए कहा कि मानव जीवन कई जन्मों के सौभाग्य से मिलता है। इस जीवन का अपना लक्ष्य निर्धारित करें और संकल्प के साथ उस दिशा में आगे बढ़ें। उन्होंने कहा कि गायत्री महामंत्र की नियमित साधना से संकल्प शक्ति सुदृढ़ होती है एक लक्ष्य प्राप्ति में सहयोग करती है। प्रतिकुलपति जी ने अपने इस प्रवास के दौरान यूगांडा के प्रधानमंत्री श्री रुहाकान रुगुंडा से प्रधानमंत्री कार्यालय, कंपाला में भेंट की और उन्हें गायत्री परिवार व विश्वविद्यालय के रचनात्मक कार्यों की जानकारी प्रदान की। प्रधानमंत्री श्री रुगुंडा ने देश–विदेश में गायत्री परिवार द्वारा चलाए जा रहे विविध आंदोलनों की सराहना की और उन्होंने उन्हें देव संस्कृति विश्वविद्यालय जैसा विश्वविद्यालय वहाँ भी खोलने का आमंत्रण दिया।

परिसर की आंतरिक गतिविधियों के क्रम में पर्यावरण विभाग द्वारा 22 मार्च को 'विश्व जल दिवस' पर एक विशेष कार्यशाला आयोजित की गई। विभाग के समन्वयक डॉ० पंकज सैनी ने बताया कि विभागीय स्तर पर अनेक तरह के कार्यक्रम आयोजित किए गए, जैसे क्विज प्रतियोगिता, पोस्टर लेखन, स्लोगन व डाक्यूमेंट्री फिल्म निर्माण आदि। इन सबका उद्देश्य जल संसाधन के संरक्षण से संबंधित था। जल दिवस के उपलक्ष्य में स्नातक एवं स्नातकोत्तर के विद्यार्थियों ने उत्साहपूर्वक भागीदारी की और जल संरक्षण के अनेक उपक्रमों–उपायों को जाना। आंतरिक गतिविधियों के क्रम में परिसर के भीतर स्थित गायत्री विद्यापीठ में 'कला एवं विज्ञान' विषय पर एक भव्य प्रदर्शनी का आयोजन किया गया जिसमें विद्यापीठ के बाल वैज्ञानिकों ने अपने हुनर एवं रचनात्मकता की मिसाल पेश की। प्रदर्शनी का उद्घाटन विद्यापीठ के अभिभावक व शांतिकुंज अधिष्ठात्री श्रद्धेया शैलदीदी ने दीप प्रज्वलन कर किया।

श्रद्धेया दीदी ने विद्यार्थियों द्वारा बनाई गई हाइड्रोलिक मशीन, एटीएम, स्वच्छ भारत अभियान, वाटर प्यूरिफायर, वैक्यूम क्लीनर व जीपीआरएस सिस्टम आदि के प्रदर्शन की सराहना की। उन्होंने कहा आज कला एवं विज्ञान प्रदर्शनी बच्चों की ऊँची सोच के साथ राष्ट्र के विकास में उनके महत्त्वपूर्ण योगदान को दरसाती है। बालमन में इस तरह के रचनात्मक विचार आना भारत के उज्ज्वल भविष्य का संकेत है। प्रतिकुलपति जी ने कहा कि बाल्यावस्था भविष्य का बीजांकुर करने का सुअवसर है। उल्लेखनीय है कि प्रदर्शनी में लगे अधिकतर मॉडल 'बेस्ट से बेस्ट' चिंतन पर आधारित थे। इस अवसर पर विद्यालय प्रबंधन समिति की अध्यक्षा श्रीमती शेफाली पण्ड्या, उपप्रधानाचार्य श्री भास्कर सिन्हा सहित समस्त शिक्षकगण उपस्थित रहे। ❑

अपनों से अपनी बात

गायत्री परिजन ही करेंगे राष्ट्र का नवनिर्माण

इस संदर्भ में दो मत नहीं हो सकते हैं कि आज अपना राष्ट्र एक नवनिर्माण की माँग करता है। विकृत वातावरण, दूषित सोच, संकीर्ण मानसिकता ने मानवीय चिंतन को इस कदर अपने आगोश में ले लिया है कि जब तक एक नूतन निर्माण का सामूहिक संकल्प उभर कर नहीं आ जाता, तब तक एक सुखद व स्वर्णिम भविष्य की कल्पना को साकार कर पाना संभव न हो सकेगा। इस नवनिर्माण में गायत्री परिजनों की, अपने इस महान अभियान में निरत कार्यकर्त्ताओं की क्या भूमिका हो सकती है? इस विषय पर मंथन करने से पूर्व इस बिंदु पर दृष्टि दौड़ा लेना जरूरी होगा कि गायत्री परिवार के एक प्रतिनिधि के व्यक्तित्व में, परमपूज्य गुरुदेव एवं परम वंदनीया माताजी के एक अंग-अवयव के भीतर किन गुणों का समावेश होना जरूरी है।

परिस्थितियों के अनुसार भूमिकाएँ निर्धारित होती हैं। शांति के समय सैनिकों को भी सामान्य क्रियाकलापों में निरत कर दिया जाता है तो वहीं युद्धकाल में शिक्षकों से लेकर चिकित्सकों की भूमिकाएँ आपातकालीन हो जाती हैं। गायत्री परिवार के कार्यकर्त्ताओं की सामान्य समय में भूमिकाएँ, आत्मपरिष्कार एवं लोकोत्थान जैसे कार्यों के सुगठित संचालन की हैं, परंतु वर्तमान समय कोई साधारण समय नहीं है।

यह तो युग-परिवर्तन का, युग-विभीषिका का समय है। इस समय की भूमिकाएँ भी आपातकालीन हो जाती हैं। वर्तमान में मात्र पवित्रता ही नहीं, बल्कि प्रखरता भी एक लोकसेवी के व्यक्तित्व में अपेक्षित योग्यता है। आज ऐसे कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता है, जिनके भीतर अपनी जिम्मेदारियों को पूर्ण करने का साहस है, जिनके भीतर अपनी जिम्मेदारियों को मूर्त रूप देने का साहस हो—वे गायत्री परिवार के कार्यकर्त्ता के रूप में स्वयं को महसूस कर सकते हैं। संघर्षों को सौभाग्य की तरह वरण करने वाले एवं चुनौतियों को चरणामृत की तरह ग्रहण करने वाले ही परमपूज्य गुरुदेव के सृजनसैनिक कहलाने की योग्यता रख सकते हैं।

आज ऐसे व्यक्तित्वों की आवश्यकता है, जिनके भीतर का उत्साह अभी जीवित हो, जिनकी रगों में बदलाव का, परिवर्तन का, क्रांति का रक्त बहता हो, जिनके भीतर समाज को बदलने की, संस्कृति के उत्थान की, राष्ट्र के नवनिर्माण की सोचें करवटें बदलती हों, जिनकी भावनाओं में पवित्रता व प्रखरता का वास हो—ऐसे व्यक्तित्व ही आज राष्ट्र के नवनिर्माण के लिए एक प्रेरणा बनकर उभर सकते हैं।

गायत्री परिवार के कार्यकर्त्ताओं के विचारों में तेजस्विता की अग्नि, उनके व्यक्तित्व में प्रखरता का प्रकाश, उनके उद्देश्यों में उत्कृष्टता की ऊँचाई होने की आवश्यकता है। यदि हमारा जीवन सकारात्मकता के प्रवाह से अभिपूरित नहीं है तो ऐसा रुका-ठहरा जीवन, स्वयं के लिए बोझ एवं दूसरों के लिए विषाद का कारण बनता है। पानी यदि एक जगह ठहर जाए तो नाला बन जाता है, उसमें बदबू आती है, कीड़े-मकोड़े पलते हैं व बीमारियाँ फैलती हैं। वही पानी यदि प्रवाहमान हो जाए तो नदी बन जाता है, सागर बन जाता है और असंख्यों का कल्याण करता है। गायत्री परिवार के कार्यकर्त्ताओं का जीवन एक प्रवाह के समान होना चाहिए, जिसमें सकारात्मकता का प्रवाह हो, जो नई सोच, नए चिंतन, नए दृष्टिकोण का प्रतीक हो, वही गायत्री परिवार का कार्यकर्त्ता कहलाने की पात्रता रखता है।

ऐसे व्यक्तित्व, जो गायत्री परिवार का कार्यकर्त्ता कहलाने की योग्यता रखते हैं उन्हें इस विषम समय में सबसे पहले अपने जीवन उद्देश्य के विषय में सोचने की आवश्यकता है। यह सोचने की आवश्यकता है कि मनुष्य जीवन के रूप में हम परमात्मा के पास से एक अनुपम सौगात लेकर के आए हैं, इधर-उधर की भाग-दौड़ में हम भले से उसके मूल्य को भुला बैठे हों, पर उससे मानवीय जीवन के मूल्य का महत्त्व कम नहीं हो जाता। परमात्मा ने मनुष्य को वह सब दिया है, जो किसी अन्य प्राणी को नसीब नहीं है। इतना शानदार शरीर, बेहतरीन चिंतन, उत्कृष्ट भावनाएँ, संस्कृति, सभ्यता,

अध्यात्म की संभावनाएँ—इनसान को इसलिए दी गई हैं कि वह कुछ ऊँचा उठ सके एवं परमात्मा के प्रतिनिधि होने की भूमिका का सम्यक निर्वहन कर सके।

दुर्भाग्य यह है कि आज ज्यादातर मनुष्य अपने जीवन को पेट-प्रजनन की दौड़ में सीमित रखकर उसी को मानवीय जीवन का उद्देश्य मानकर बैठ जाते हैं, परंतु इतना मात्र यदि मनुष्य जीवन का उद्देश्य होता तो वह कार्य जानवर हमसे बेहतर तरीके से करते हैं। क्या मात्र अपने स्वार्थ के लिए जीवन जीना ही इनसान का उद्देश्य है? क्या जानवरों की तरह एकदूसरे की चीजों पर झपटना ही मानवीय लक्ष्य कहा जा सकता है? मनुष्य जीवन की कीमत इस बात से तय नहीं होती कि हमें किस परिवार में जन्म मिला है? हमारा खुद का मकान है या नहीं? हम कहाँ तक पढ़े हैं? हमें कितने का पैकेज मिलता है? बल्कि मनुष्य के जीवन की कीमत उसके जीवनलक्ष्य से निर्धारित होती है। वो इस बात से तय होती है कि हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है और हम उसे किस मुकाम पर ले जाना चाहते हैं?

आज गायत्री परिवार के प्रत्येक कार्यकर्त्ता को सर्वप्रथम अपने जीवन-उद्देश्य की ओर एक दृष्टि दौड़ाने की आवश्यकता है। यह सोचने की आवश्यकता है कि क्या हम मनुष्य जीवन के रूप में मिले इस सौभाग्य के साथ न्याय कर पा रहे हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि समाज के दबाव ने और हमारी तृष्णाओं की दौड़ ने हमें जिंदगी में एक गलत मुकाम पर ला कर खड़ा कर दिया हो। औरों का पता नहीं, परंतु गायत्री परिजनों को यह शोभा नहीं देगा कि उनका जीवन मानवोचित गरिमा के अनुकूल न हो। हमारा चिंतन, चरित्र, व्यवहार इस कोटि के होने चाहिए कि उनको देखकर अनेकों को प्रेरणा मिल सके। ऐसा तभी संभव है, जब हम मनुष्योचित गौरव-गरिमा के अनुसार जीवन को जीने का प्रयत्न करेंगे।

उद्देश्य के निर्धारण के साथ परमपूज्य गुरुदेव द्वारा दिए गए अनेक सूत्र-संकल्पों में से कम-से-कम एक को तो अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य बनाने की जरूरत है। परमपूज्य गुरुदेव ने सुदृढ़ समाज के लिए स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन और सभ्य समाज का सूत्र दिया था। हम चाहें तो **स्वस्थ शरीर** के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपने-अपने क्षेत्र में एक व्यायामशाला खुलवा सकते हैं, एक योग का केंद्र खोल सकते हैं, जहाँ परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रतिपादित प्रज्ञायोग व्यायाम एवं साधना का निःशुल्क प्रशिक्षण हर क्षेत्रवासी को दिया जा सके। स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि उन्हें ऐसे साधुओं की जरूरत है, जो गीता भी पढ़ सकें एवं फुटबॉल भी खेल सकें। आज के समय में जब लोगों के शरीर बीमारियों के मुख्यालय बन गए हैं, योग, प्राकृतिक चिकित्सा, व्यायामशाला के केंद्रों की स्थापना इस क्षेत्र में एक अभूतपूर्व क्रांति को जन्म दे सकती है।

स्वच्छ मन के संकल्प को पूर्ण करने के लिए हम पुस्तकालय, वाचनालय, खोल सकते हैं। पूज्य गुरुदेव के साहित्य को जन-जन तक निःशुल्क पहुँचाने की व्यवस्था कर सकते हैं। इस हेतु एक आसान तरीका बस व ट्रेन में युगसाहित्य के विक्रय का हो सकता है। सामान्य नागरिकों के पास युगसाहित्य पढ़ने का समय नहीं हो तो भी यात्रियों के पास पर्याप्त रहता है। हमारे लाखों परिजन व्यक्तिगत, व्यावसायिक या सरकारी यात्राएँ प्रतिदिन करते हैं। यदि यह माना जाए कि एक तहसील से प्रतिदिन हमारे न्यूनतम 10 परिजन भी किसी कारण से यात्रा करते हों तो एक जिले में 50 की संख्या बैठती है, जो बढ़कर राज्य में लगभग 2500 और पूरे भारत में लगभग 65000 हो जाती है।

यदि यह माना जाए कि इस औसतन यात्रा की अवधि 2 घंटे की है और उसमें से लगभग आधे समय में हमारे परिजन घूम-घूमकर पूज्य गुरुदेव का साहित्य विक्रय करें तो लाखों लोगों तक यह साहित्य सहजता से पहुँच जाएगा। यदि कोई ट्रेन व बस में घूमे भी न एवं मात्र अपनी सीट के आस-पास बैठे 6 या 7 सहयात्रियों तक भी युगसाहित्य पहुँचा दे तो भी ऐसे लोगों की संख्या लाखों में पहुँच जाती है, जिन तक परमपूज्य गुरुदेव का साहित्य पहुँचा। यदि यह सोचा जाए कि एक यात्रा में मात्र 2 सहयात्रियों ने 10 रुपये मूल्य का ही युगसाहित्य क्रय किया तो लाखों रुपयों का युगसाहित्य एक दिन में उपलब्ध कराया जा सकता है। ऐसा विश्वास किया जा सकता है कि परमपूज्य गुरुदेव के सृजनसैनिक इतना छोटा-सा उपक्रम तो सहजता से संभव बना सकते हैं।

तीसरा सूत्र **सभ्य समाज** का है। उसको मूर्त रूप देने के लिए अपने परिजन स्वच्छता का अभियान, वृक्षारोपण का अभियान या नदी शुद्धि का अभियान

अपने हाथ में ले सकते हैं। इनमें से प्रत्येक का प्रकल्प शांतिकुंज में है, जिससे अपेक्षित मार्गदर्शन प्राप्त करके इन सूत्रों को साकार रूप देने का कार्य संपन्न किया जा सकता है। इन पंक्तियों को लिखने के पीछे का मूल अभिप्राय यह ही है कि गायत्री परिवार को एक माला में पिरोने के पीछे का परमपूज्य गुरुदेव का उद्देश्य यह था कि हम सब मिलकर दुष्प्रवृत्तियों से लोहा ले सकें एवं सत्प्रवृत्तियों से परिपूर्ण समाज तैयार कर सकें। ऐसा करने के लिए हमें एक अभियान के रूप में गति पकड़ने की आवश्यकता है।

यह समय रुकने-ठहरने-विचारने का नहीं, बल्कि क्रांति-परिवर्तन के शंखनाद का है। प्रत्येक गायत्री परिजन अपने-अपने जीवन-उद्देश्य पर दृष्टिपात करने के साथ-साथ, परमपूज्य गुरुदेव द्वारा प्रदत्त सूत्र-संकल्प में से कम-से-कम एक को साकार रूप देने का प्रयोजन अपने हाथ में ले, ताकि राष्ट्र के नवनिर्माण का एवं विश्व के परिवर्तन का महती संकल्प समय रहते पूरा हो सके। आज यही संकल्प साकार करने की आवश्यकता है। ❑

दुनिया के कट्टर और खूँखार बादशाहों में तैमूरलंग का भी नाम आता है। व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा, अहंकार और जवाहरात की तृष्णा से पीड़ित तैमूर ने एक विशाल भू-भाग को रौंदकर रख दिया। बगदाद में उसने एक लाख मरे हुए व्यक्तियों की खोपड़ियों का पहाड़ खड़ा कराया था। इसी बात से उसकी क्रूरता का पता चल जाता है।

एक समय की बात है कि बहुत से गुलाम पकड़कर उसके सामने लाए गए। तुर्किस्तान का विख्यात कवि अहमदी भी दुर्भाग्य से पकड़ा गया। जब वह तैमूर के सामने उपस्थित हुआ तो एक विद्रूप-सी हँसी हँसते हुए तैमूर ने दो गुलामों की ओर इशारा करते हुए पूछा—"सुना है कि कवि बड़े पारखी होते हैं, बता सकते हो कि इनकी कीमत क्या होगी?" "इनमें से कोई भी 4 हजार अशरफियों से कम कीमत का नहीं है"—अहमदी ने सरल, किंतु स्पष्ट उत्तर दिया। तैमूर ने अभिमान से पूछा—"मेरी कीमत क्या होगी?" निडर भाव से अहमदी ने उत्तर दिया—"यही कोई 24 अशरफी।"

तैमूर क्रोध से आगबबूला हो गया। वह चिल्लाकर बोला—"बदमाश! इतने में तो मेरी सदरी भी नहीं बन सकती। तू यह कैसे कह सकता है कि मेरा मूल्य कुल 24 अशरफी है?" अहमदी ने बिना किसी आवेश या उत्तेजना के उत्तर दिया—"बस, यह कीमत उस सदरी की है। आपकी तो कुछ नहीं। जो मनुष्य पीड़ितों की सेवा नहीं कर सकता, बड़ा होकर छोटों की रक्षा नहीं कर सकता, असहायों की, अनाथों की जो सेवा नहीं कर सकता, मनुष्य से बढ़कर जिसे अहमियत प्यारी हो—उस इनसान का मूल्य चार कौड़ी भी नहीं, उससे अच्छे तो ये गुलाम ही हैं, जो किसी के काम तो आते हैं।"

साधना के कण तुम्हारे।
साधना के क्षण तुम्हारे॥

आप ही जीवन हमारा, आपकी ही प्राणधारा।
आप ही सर्वस्व गुरुवर! आप जीवन-धन हमारे।
साधना के कण तुम्हारे, साधना के क्षण तुम्हारे॥

आपके बल जी रहे हैं, प्रेम का रस पी रहे हैं।
क्या करें अर्पित तुम्हें हम, साधना, साधन तुम्हारे।
साधना के कण तुम्हारे, साधना के क्षण तुम्हारे॥

तप न जप कर पा रहे हैं, मात्र मन समझा रहे हैं।
अनगढ़े के अनगढ़े हैं, अनगढ़े अर्पण तुम्हारे।
साधना के कण तुम्हारे, साधना के क्षण तुम्हारे॥

लोक-मंगल की ललक है, यद्यपि सामर्थ्य कम है।
छलछला देना हृदय में, भाव-संवेदन तुम्हारे।
साधना के कण तुम्हारे, साधना के क्षण तुम्हारे॥

साधना हो 'लोकसेवा' तो सहज हो 'सिद्धि-मेवा'।
हों सभी तुमको समर्पित, नाथ! अक्षय-धन हमारे॥

—मंगल विजय 'विजयवर्गीय'